॥श्रीः॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

१६१

महर्षि पाणिनि विरचिता

पाणिनीयशिक्षा

व्याख्याकार

डॉ. राकेश शास्त्री

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य विद्या, आयुर्वेद तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली (भारत)

॥श्रीः॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

161

महर्षि पाणिनि विरचिता

पाणिनीयशिक्षा

(विस्तृत भूमिका, मूल, अन्वय, हिन्दी अनुवाद, 'चन्द्रिका' हिन्दी, संस्कृत व्याख्या, विशेष टिप्पणी, 52 डायग्राम, परिशिष्टादि सहित)

व्याख्याकार

डॉ. राकेश शास्त्री

डी.लिट्

बी.ए. (आनर्स-संस्कृत) महाविद्यालय स्वर्णपदक, एम.ए.(संस्कृत),

पी-एच.डी.(वेद) डी.लिट्(संस्कृत साहित्य)

साहित्य-पुराणेतिहासाचार्य (विश्वविद्यालय स्वर्णपदक प्राप्त)

सेवा निवृत्त-संस्कृत-विभागाध्यक्ष,

श्री गोविन्द गुरु राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

बाँसवाडा(राज.)-327001

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य-विद्या, आयुर्वेद एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली-110007 (भारत)

प्रास्ताविकम्

पाणिनीय–शिक्षा लघु होने पर भी अत्यन्त लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ है। लौकिक तथा वैदिक दोनों ही शास्त्रों के लिए उपकारी होने के कारण इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है। कुल साठ श्लोकों में निबद्ध इस लघु–ग्रन्थ में वर्णों के उच्चारण से सम्बन्धित विषयों को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत करना, इसकी दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता कही जा सकती है।

यद्यपि ग्रन्थ के अन्त में प्रयुक्त श्लोक संख्या 56 में इसका रचयिता दाक्षी–पुत्र महर्षि पाणिनि को बताया गया है, किन्तु उसके बाद प्रयुक्त श्लोकों में उनकी प्रशंसा करने के कारण विद्वानों ने इसके पाणिनि द्वारा विरचित होने के सम्बन्ध में प्रश्न भी उठाए हैं, क्योंकि यहाँ प्रयुक्त तीन श्लोकों में पाणिनि मुनि को नमस्कार किया गया है।

इन श्लोकों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य पाणिनि के शिक्षा–सम्बन्धी ज्ञान को, उनके किसी प्रशंसक विद्वान् अथवा शिष्य द्वारा ग्रन्थ के रूप में लिपिबद्ध किया गया। इसकी भी प्रबल सम्भावना की जा सकती है कि आचार्य पाणिनि ने ही इसकी संरचना की हो, किन्तु उनकी प्रशंसा में लिखे गए, ये श्लोक बाद में किसी प्रशंसक द्वारा यहाँ जोड़ दिए गए हों।

इसी सम्बन्ध में उल्लेखनीय यह भी है कि इस पाणिनीय–शिक्षा के ऊपर अनेक विद्वानों ने टीकाओं की संरचना भी की है। आकार में अत्यन्त छोटा होने पर भी यह संस्कृत–भाषा का उपयोगी ज्ञान कराने में पूर्णतया सक्षम है। यही कारण है कि अधिकाँश विश्व–

विद्यालयों ने अलग–अलग स्तरों पर, इस ग्रन्थ का निर्धारण अपने पाठ्यक्रमों में किया हुआ है।

पुनरपि हमें अपनी दूसरी पुस्तकों के समान इसे भी डाय–ग्रामिक रूप में प्रस्तुत करते हुए, अत्यन्त संतोष तथा हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। आशा है, अन्य ग्रन्थों के समान यह लघु–ग्रन्थ भी विद्वानों को संतोष प्रदान करेगा।

इसी प्रसंग में विशेषरूप से कथनीय यह भी है कि प्रस्तुत व्याख्या को छात्रोपयोगी बनाने के लिए, हमने इसकी विस्तृत भूमिका में वैदिक साहित्य तथा व्याकरण का संक्षिप्त इतिहास देने के बाद, ग्रन्थ के मूल श्लोकों तथा अन्वय, हिन्दी–अनुवाद, 'चन्द्रिका' हिन्दी, संस्कृत व्याख्या, विशेष और टिप्पणी शीर्षकों के अन्तर्गत पर्याप्त उपयोगी सामग्री देने का विनम्र प्रयास किया है। यह सामग्री वस्तुतः प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन में निश्चय ही सहयोगी सिद्ध होगी, ऐसा हमारा मानना है।

अन्त में इस ग्रन्थ के लेखन में पूर्ववर्ती विद्वानों की कृतियों से पर्याप्त सहायता ली गयी है। अतः उन सभी के लेखक विद्वानों के प्रति हम हृदय से आभार व्यक्त करना अपना पुनीत–कर्तव्य समझते हैं। साथ ही, इस सम्बन्ध में यह भी विनम्रतापूर्वक आग्रह करते हैं कि इस लघु–कृति में जो भी अच्छाइयाँ हैं, वे सभी पूज्यपाद गुरुओं के श्रीचरणों का प्रताप है, जो त्रुटियाँ हैं, वे हमारे अज्ञानवश ही हुई हैं। अतः इस विषय में कृपापूर्वक क्षमा प्रदान करते हुए, उनकी ओर हमारा ध्यान अवश्य आकर्षित कर अनुगृहीत करें।

इति शुभम्।

राकेश शास्त्री डी.लिट

समर्पण

परम स्नेहमयी
माताश्री
जिनसे सदा ही मुझे
असीम स्नेहरूपी शीतल–छाया की प्राप्ति हुई,
उनकी दिवंगत आत्मा को, जहाँ भी वे हों,
प्रसन्न रहें, सुखी रहें
इसी कामना के साथ

परमश्रद्धेया,

स्व. श्रीमती उमा गर्ग

(श्वश्रू–माँ)

के श्रीचरणों में
श्रद्धापूर्वक

डॉ. राकेश शास्त्री डी.लिट्

विषयानुक्रमणिका

(क) प्रास्ताविकम् 01

(ग) समर्पण 03

(ख) विषयानुक्रमणिका 05–08

(घ) भूमिका 09–52

(1) वैदिक साहित्य एक परिचय 09

(क) संहिता ग्रन्थ 11–13

1) ऋग्वेद संहिता 11

2) यजुर्वेद संहिता 11

3) सामवेद संहिता 12

4) अथर्ववेद संहिता 13

(ख) ब्राह्मण ग्रन्थ 14–18

(i) ऋग्वेदीय ब्राह्मण 15

(अ) ऐतरेय ब्राह्मण 15

(ब) शांखायण ब्राह्मण 16

(ii) यजुर्वेदीय ब्राह्मण 16

(अ) शतपथ ब्राह्मण(शुक्ल यजुर्वेद) 16

(ब) तैत्तिरीय ब्राह्मण(कृष्ण यजुर्वेद) 16

(iii) सामवेदीय ब्राह्मण 16

1. ताण्ड्य ब्राह्मण (17) 2. सामविधान ब्राह्मण (17) 3. षड्विंश ब्राह्मण (17) 4. जैमिनीय ब्राह्मण (17) 5. अद्भुत् ब्राह्मण (17) 6. आर्षेय ब्राह्मण (17) 7. दैवत ब्राह्मण (17) 8.संहितोपनिषद् ब्राह्मण (18) 9. वंश ब्राह्मण (18) 10. छान्दोग्य ब्राह्मण (18)।

(iv) अथर्ववेदीय ब्राह्मण 18

(अ) गोपथ ब्राह्मण 18

(ग) आरण्यक ग्रन्थ	19–22
(i) ऋग्वेदीय आरण्यक	20
(अ) ऐतरेय आरण्यक	20
(ब) शांखायन आरण्यक	20
(ii) यजुर्वेदीय आरण्यक	20
(अ) तैत्तिरीय आरण्यक	21
(ब) मैत्रायणी आरण्यक	21
(iii) सामवेदीय आरण्यक	21
(अ) तवलकार आरण्यक	21
(ब) छान्दोग्य आरण्यक	22
(iv) अथर्ववेदीय आरण्यक	22
(घ) अनुक्रमणी साहित्य	22–23
1) ऋक्सर्वानुक्रमणी	22
2) ऋक्यजुः सर्वानुक्रमणी	22
3) याजुष् सर्वानुक्रमणी	23
4) सर्वानुक्रमणी	23
5) आश्वलायनी अनुक्रमणी	23
6) कल्पानुवादसूत्रादि	23
(ङ) उपनिषद् ग्रन्थ	**24–32**
(i) उपनिषद् का अभिप्राय	24
(ii) उपनिषदों का महत्त्व	24
(iii) उपनिषदों का रचना–काल	26
(iv) उपनिषदों की संख्या	28
(v) वेदानुसार उपनिषदों का वर्णीकरण	28
(अ) ऋग्वेदीय उपनिषद्	28
(i) ऐतरेय उपनिषद्	28
(ii) कौषीतकि उपनिषद्	29
(ब) यजुर्वेदीय उपनिषद	29
(i) बृहदारण्यकोपनिषद	29

(ii) श्वेताश्वतरोपनिषद् 29
(iii) मैत्रायणीयोपनिषद् 30
(iv) ईशोपनिषद् 30
(v) कठोपनिषद् 30
(vi) तैत्तिरीयोपनिषद् 30
(स) सामवेदीय उपनिषद् 31
(i) छान्दोग्योपनिषद् 31
(ii) केनोपनिषद् 31
(द) अथर्ववेदीय उपनिषद् 32
(i) प्रश्नोपनिषद् 32
(ii) मुण्डकोपनिषद् 32
(iii) माण्डूक्योपनिषद् 32
(च) वेदांग 33–36
अ) वेदांगों की संख्या 33
(क) शिक्षा (33) (ख) व्याकरण (34) (ग) छन्द (34) (घ) निरुक्त (35) (ङ) ज्योतिष (35) (च) कल्प (36)।
(छ) सूत्रग्रन्थ – 36–37
(i) श्रौत्रसूत्र 36
(ii) गृह्यसूत्र 36
(iii) धर्मसूत्र 37
(iv) शुल्वसूत्र 37
(ज) वेदांगों का महत्त्व 37
(झ) शिक्षा वेदांग 39–43
(अ) पाणिनीय–शिक्षा 40
i) वर्ण 40
ii) स्वर 41
iii) मात्रा 42
iv) बल 42
v) साम 42

vi) संज्ञान 42
vii) पाठक के गुण 42
viii) पाठक के दोष 43
(ञ) प्रमुख शिक्षा ग्रन्थ **44–45**
(i) पाणिनीय शिक्षा (45) (ii) भरद्वाज शिक्षा (45) (iii) याज्ञवल्क्य शिक्षा (45) (iv) प्रातिशाख्य प्रदीप शिक्षा (45) (v) नारदीय शिक्षा (45) अन्य शिक्षा–ग्रन्थ (45)।
(ट) आचार्य पणिनि **46–52**
i) पाणिनि का जीवन चरित 46
ii) पाणिनि की रचनाएँ 49
(क) अष्टाध्यायी (49) (ख) धातु पाठ (49) (ग) गण पाठ (49) (घ) उणादिसूत्र (50) (ङ) लिंगानुशासन (51) (च) द्वि रूपकोश (51) (छ) जाम्बवती विजय महाकाव्य (52) ।
(2) मूल, हिन्दी अनुवाद, 'चन्द्रिका' हिन्दी, संस्कृत–व्याख्या, टिप्पणियाँ,(पाँच–पाँच श्लोकों के बारह खण्डों में) **53–134**
(1–5) श्लोकों में प्रतिज्ञा, प्रयोजनादि 53
(6–10) " वर्णोच्चारण प्रक्रिया 60
(11–15) " उदात्तानुदात्तस्वरितादि के नियम 68
(16–20) " कवर्ग(5 वर्ण) अन्तस्थादि के नियम 76
(21–25) " स्वर–उष्मादि का आभ्यन्तर प्रयत्न 85
(26–30) " रंग पद का उच्चारण प्रकारादि 92
(31–35) " अक्षरों के उच्चारण की शिक्षा 97
(36–40) " प्रातः माध्यन्दिन योगों के उच्चारण प्रकार 102
(41–45) " वेदपुरुष में अंगों की परिकल्पना 108
(46–50) " उदात्तानुदात्तस्वरित के उदाहरण 114
(51–55) " सदाचारयुक्त शिक्षक आवश्यक 119
(56–60) " शांकरी विद्या की गुरु–परम्परा 127
(3) परिशिष्ट **135–136**
a. योग–सूत्रों की अकादिक्रम से सूची 135
b. परीक्षोपयोगी प्रश्न 136

•••

।। श्रीः ।।

भूमिका

1. वैदिक साहित्य एक परिचय–

अथाह ज्ञान–राशि के अक्षय भण्डार 'वेद' भारत ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्वसाहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सामान्यरूप से वेदों से अभिप्राय ऋग्वेद, युजर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन्हीं चार वेदों से ग्रहण किया जाता है, किन्तु **"मन्त्र–ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्"** इत्यादि कथन के अनुसार–संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्रग्रन्थ और वेदांगों तक सम्पूर्ण वैदिक साहित्य को ही 'वेद–संज्ञा' प्रदान की गयी है।[1]

वेदों को 'श्रुति' भी कहा गया है, क्योंकि प्राचीन समय में लेखन–कला के विकास के अभाव में, गुरु–शिष्य परम्परा से ही वेदों को सुरक्षित रखा गया। तदनुसार गुरु अपने शिष्यों को इनका ज्ञान कराते थे, जिसे शिष्य सुनकर हृदयंगम करके, अपने शिष्यों को उन्हीं मन्त्रों की शिक्षा प्रदान करते थे। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में स्वर एवं उच्चारण सम्बन्धी दोषों का विशेषरूप से ध्यान रखा जाता था। इसके अलावा सार्थक, सुसंगत और श्रेष्ठ अर्थ का कथन करने के कारण, वेदों को 'निगम' संज्ञा भी प्रदान की गयी है।

भारतीय संस्कृति और शास्त्रों द्वारा वेदों को आप्त–प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया है। यही कारण है कि इन्हें सदा ही आदर की दृष्टि से देखा जाता रहा है। इसका अभिप्राय यही है कि– जिन बातों को हम प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण द्वारा नहीं जान पाते हैं, उन्हें वेदों के माध्यम से सहजरूप में ही जाना जा सकता है।

---

[1] इसीलिए हमने 'वेदों के अंग'(वेदांग) पाणिनीय–शिक्षा की व्याख्या करने से पूर्व सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का संक्षिप्त–परिचय यहाँ प्रस्तुत किया है।

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'[1] मनुस्मृतिकार के कथन के अनुसार वेद को सभी धर्मों का मूल भी स्वीकार किया गया है। यहाँ तक कि वेदों को सर्वज्ञानमय और सभी विद्याओं का उत्पत्ति स्थान भी माना गया है।[2] वस्तुस्थिति तो यह है कि वेदों में दर्शन, राजनीति, मनोविज्ञान, गणित, अर्थशास्त्र, काव्यशास्त्र, अध्यात्म आदि अनेकानेक विषयों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिन्तन किया गया है, जो हमारे ऋषि–मुनियों की नव–नवोन्मेषिणी प्रतिभा के ही परिचायक कहे जा सकते हैं।

इतना ही नहीं, विश्व की सर्वाधिक प्राचीन भारतीय–संस्कृति के तो मूलस्रोत ही वेद रहे हैं। इसलिए यदि हम भारतीय–संस्कृति के वास्तविकरूप को समझना चाहते हैं, तो हमें इसके लिए वेद और परवर्ती वैदिक साहित्य का ही मुखापेक्षी होना होगा। भारतीय–संस्कृति के प्रसिद्ध विद्वान् लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने तो आर्यत्व के लक्षण के रूप में वेदों की प्रामाणिकता को ही प्रमुखरूप से स्वीकार किया है– **''प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु।''**

कहने का अभिप्राय यही है कि–वेदों का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भाषा–वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, काव्यशास्त्रीय एवं धार्मिक दृष्टियों से अत्यधिक महत्त्व है, क्योंकि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में प्राचीन भारतीय सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक आदि अनेकानेक स्थितियों का विशदरूप में विवरण उपलब्ध होता है। इसके अलावा ऋषियों की काव्य–शास्त्रीय प्रतिभा से परिचित होने के लिए भी, हमें वेदों का अध्ययन ही विशेषरूप से करना होगा। इसप्रकार वैदिक–साहित्य के महत्त्व को दृष्टिगत करते हुए, हम यहाँ सर्वप्रथम इसका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं–

---

[1]. वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।। मनुस्मृति– 2/6 ।

[2]. यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।। मनुस्मृति–2/7 ।

अध्ययन की दृष्टि से हम सम्पूर्ण वैदिक साहित्य को मुख्य रूप से पाँच भागों में विभाजित कर सकते हैं–

(क) संहिता–ग्रन्थ

(ख) ब्राह्मण–ग्रन्थ

(ग) आरण्यक–ग्रन्थ

(घ) उपनिषद्–ग्रन्थ

(ङ) वेदांग

(क) संहिता–ग्रन्थ– वेदों के मन्त्रात्मक भाग को संहिता कहा गया है। छन्दोबद्धता ही इस साहित्य की प्रमुख विशेषता रही है। इनमें स्वर–चिह्नों का प्रयोग भी किया गया है। ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा वैदिक ऋषियों ने जैसा दर्शन[1] या अनुभव किया, उसी सबको यहाँ संकलित किया गया है। संहिता–ग्रन्थों की संख्या चार रही है–

1) **ऋग्वेद संहिता–** यह सर्वाधिक प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण संहिता है, इसमें दस मण्डलों के अन्तर्गत 1028 सूक्तों में कुल 10552 मन्त्रों को संकलित किया गया है। ये सभी स्तुतिपरक मन्त्र हैं, क्योंकि **'ऋच्यते स्तूयते अनया इति ऋक्'**।

ऋचाओं के संग्रह के कारण ही इसे ऋग्वेद–संहिता संज्ञा प्रदान की गयी है। महाभाष्यकार पतंजलि ने इसकी इक्कीस शाखाओं का उल्लेख किया है,[2] किन्तु आचार्य शौनक ने इसकी केवल पाँच शाखाओं को ही मान्यता प्रदान की है। तदनुसार– शाकल–शाखा, वाष्कल–शाखा, आश्वलायन–शाखा, शांखायन–शाखा, माण्डूकायन–शाखा। उपर्युक्त शाखाओं में आजकल ऋग्वेद की केवल शाकल शाखा ही उपलब्ध है, इसलिए यही प्रचलन में भी है।

2) **यजुर्वेद संहिता–** पद्यबन्ध और गीतिसहित मन्त्रात्मक संरचना को 'यजुष्' कहा जाता है। इस संहिता में यज्ञ–विषयक मन्त्रों

---

1. ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।
2. एकविंशतिधाबाह्वृच्यम् – (महाभाष्य आह्निक–1)

का संग्रह किया गया है।[1] इसीकारण इसे 'अध्वर्युवेद' भी कहते हैं। उल्लेखनीय है कि इसमें कुछ मन्त्र ऋग्वेद संहिता से ग्रहण किए गए हैं। इतना ही नहीं, इस संहिता में कुछ अंश गद्यात्मकरूप में भी विद्यमान है। महर्षि पतंजलि ने इसे सौ शाखाओं वाला बताया है,[2] वर्तमान में इसकी केवल छः शाखाएँ ही उपलब्ध हैं–

(अ) शुक्ल यजुर्वेद की **माध्यंदिन संहिता** और **काण्व संहिता**

(आ) कृष्ण यजुर्वेद की **कठ, कपिष्ठल, मैत्रायणी** और **तैत्तिरीय** संहिता ।

इनमें भी माध्यंदिन संहिता को ही वाजसनेयी संहिता भी कहा जाता है। इसमें कुल चालीस अध्याय, तीन सौ तीन अनुवाक और 3975 मन्त्र हैं। शुक्ल यजुर्वेद का 'शतपथ ब्राह्मण' और 'बृहदारण्य-कोपनिषद्' अत्यधिक प्रसिद्ध है। यजुर्वेद में यज्ञ–विषयक मन्त्रों के अलावा ऐन्द्रजालिक मन्त्र और प्रहेलिकाओं का भी प्रयोग हुआ है।

3) **सामवेद संहिता–** ऋग्वेद के मन्त्रों को ही विशेष गान–पद्धति द्वारा गाए जाने पर उन्हें 'सामन्' कहा गया है[3], क्योंकि 'स' अथवा 'सा' का अर्थ है, ऋग्वेद और 'अम' का अभिप्राय है– 'गान'। इसप्रकार साम में वस्तुतः दोनों का ही समन्वय होता है।[4] यही कारण है कि इस संहिता में ऋग्वेद से ही अधिकाँश मन्त्रों को संकलित किया गया है, क्योंकि इस वेद की कुंल मन्त्र–संख्या 1875 में से ऋग्वेद के मन्त्रों की संख्या 1771 रही है।

महर्षि पतंजलि ने इसे 1000 शाखाओं वाला बताया है,[5] किन्तु कुछ विद्वानों ने यहाँ 'सहस्र' शब्द से अभिप्राय 'गान' करने की एक

---

[1]. यजुर्यजते ।

[2]. एकशतमध्वर्युशाखा– महाभाष्य आह्निक– 1।

[3]. गीतिषु समाख्या । पूर्वमीमांसा 2.1.36 ।

[4]. यजुर्वेद– अध्याय 30 ।

[5]. सहस्रवर्त्मा सामवेदः– महाभाष्य आह्निक– 1।

हजार पद्धतियों से ग्रहण किया है।[1] वर्तमान समय में इसकी केवल तीन शाखाएँ ही उपलब्ध हैं– राणायणीय–शाखा, कौथुमीय–शाखा, जैमिनीय–शाखा । इनमें 'जैमिनीय–शाखा' को ही 'तलवकार–शाखा' भी कहा गया है। विषय की दृष्टि से सामवेद–संहिता में उपासना की ही प्रमुखता रही है, साथ ही, यहाँ सोमयाग से सम्बन्धित मन्त्रों का भी अधिक उपयोग हुआ है।

कौथुमीय शाखा के अनुसार 'सामवेद–संहिता' के दो विभाग हैं– **(अ) पूर्वार्चिक (ख) उत्तरार्चिक**। यहाँ आर्चिक से अभिप्राय 'ऋचा सम्बन्धी' से ग्रहण करना चाहिए। इसके पूर्वार्चिक में छः प्रपाठक हैं और प्रपाठकों को अध्यायों एवं खण्डों में विभाजित किया गया है। इसके एक खण्ड को 'दशति' भी कहते हैं, जिसके अन्तर्गत एक ही देवता और छन्द विषयक ऋचाओं को संकलित किया गया है।

इसके पूर्वार्चिक में सामयोनि ऋचाओं की संख्या कुल 650 रही है तथा उत्तरार्चिक में कुल नौ प्रपाठक विद्यमान हैं। प्रथम से पंचम प्रपाठक तक प्रत्येक प्रपाठक में, दो प्रपाठकार्ध तथा षष्ठ प्रपाठक में नवम प्रपाठक तक प्रत्येक में तीन प्रपाठकार्ध हैं, जिनमें संकलन की गयी सामयोनि ऋचाओं की संख्या कुल 1225 रही है।

4) **अथर्ववेद संहिता–** इस संहिता के अन्तर्गत विषयों का वैविध्य प्रयुक्त हुआ है। यथा– यहाँ तन्त्र, मन्त्र और जादू–टोने आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित मन्त्रों का संकलन किया गया है। कुछ मन्त्र यहाँ ऋग्वेद से भी ग्रहण किए गए हैं। मुख्यरूप से 'अथर्वा' ऋषि द्वारा द्रष्ट मन्त्रों का संग्रह किए जाने के कारण, इसे 'अथर्ववेद' संज्ञा प्रदान की गयी है, किन्तु कुछ विद्वान् 'अथर्वा' की व्याख्या कुछ भिन्न

---

[1]. विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य – सामवेद संहिता, श्री दामोदर सातवलेकर की भूमिका, पृ. 1–2 ।

प्रकार से करते हैं।[1] इसी को आंगिरस वेद, अथर्वांगिरसा वेद, ब्रह्मवेद आदि नामों से भी पुकारा गया है।

महर्षि पतंजलि ने इसकी नौ शाखाओं का कथन किया है,[2] किन्तु वर्तमान में इसकी शौनक और पैप्पलाद दो शाखाएँ ही उपलब्ध हैं। अध्यात्म, दार्शनिक चिन्तन, सभ्यता और संस्कृति आदि अनेक दृष्टियों से इस वेद का अत्यधिक महत्त्व रहा है। इसके अलावा इस वेद के मन्त्रों का विनियोग शान्ति–स्थापना, शत्रुओं से सन्धि, यात्राओं में सुरक्षा, धन–दौलत, स्वास्थ्य एवं दीर्घायु प्राप्त करने और रोगों, दुष्टों के विनाश के लिए भी किया जाता था। इसलिए इसे अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई।

इसकी शौनकीय शाखा में कुल 20 काण्ड, 731 सूक्त, तथा 5987 मन्त्रों का प्रयोग हुआ है। इनमें भी 1200 मन्त्रों को ऋग्वेद से ग्रहण किया गया है। इसके 13वें काण्ड में अध्यात्म–विषयक सूक्तों का प्रयोग हुआ है। इस संहिता का गोपथ–ब्राह्मण अत्यधिक प्रसिद्ध है।

(ख) ब्राह्मण–ग्रन्थ– इन्हें वैदिक साहित्य की दूसरी कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। 'संहिता–ग्रन्थों के मन्त्रों की व्याख्या तथा विनियोग करने के कारण इन्हें 'ब्राह्मण' संज्ञा प्रदान की गयी है।' इसके अतिरिक्त 'ब्रह्मन्' शब्द का एक अर्थ 'यज्ञ' भी है। अतः वेद–मन्त्रों की यज्ञ–विषयक व्याख्या प्रस्तुत करने के कारण इन्हें ब्राह्मण–

---

[1]. (क) गोपथ ब्राह्मण ने अथर्वा को अथर्वाक् का संक्षिप्त रूप मानते हुए 'समीप में स्थित आत्मा को अपने अन्दर देखने से' ग्रहण किया है।(गोपथ–1–4)

(ख) जबकि निरुक्तकार ने इसे √थर्व् धातु को गत्यर्थक मानते हुए अथर्वन् का अर्थ गतिहीन या स्थिर किया है। इसका अभिप्राय हुआ कि– इस वेद में चित्तवृत्तियों के निरोधरूपी योग का उपदेश किया गया है, इसलिए इसका नाम अथर्ववेद रखा गया है। निरुक्त– 11–18 ।

[2]. नवधाऽऽथर्वणोवेदः । महाभाष्य आह्निक– 1 ।

ग्रन्थ कहा गया। इनमें यज्ञों की आध्यात्मिक, आधिदैविक और वैज्ञानिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की गयी हैं।

इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि सभी 'ब्राह्मण' ग्रन्थ गद्यरूप में प्रयुक्त हुए हैं। यही कारण है कि यहाँ हमें सर्वाधिक प्राचीन वैदिक संस्कृत के गद्यरूप के दर्शन होते हैं। साथ ही, वेद–मन्त्रों की व्याख्या की दृष्टि से भी इनके महत्त्व को स्वीकार किया जा सकता है। इसीप्रकार इन ग्रन्थों में वैदिक शब्दों के निर्वचन भी प्रस्तुत किए गए हैं, जिन्हें व्याकरण एवं भाषा–विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। सभी चारों संहिताओं के ब्राह्मण–ग्रन्थों का अलग–अलग रूप में निर्माण किया गया है।

ध्यातव्य है कि इन सभी ग्रन्थों की रचना लगभग सम–सामयिक ही रही है। आचार्य शौनक ने इनकी संख्या 1100 स्वीकार की है, जबकि महर्षि पतंजलि ने इसे 1130 माना है, किन्तु वर्तमान समय में केवल नौ ब्राह्मण–ग्रन्थ ही मिलते हैं, जिनका संक्षेप में विवरण इसप्रकार है–

(क) **ऋग्वेदीय ब्राह्मण**– ऋग्वेद के दो ब्राह्मण ग्रन्थ विशेषरूप से मिलते हैं–

(अ) ऐतरेय ब्राह्मण– यह ऋग्वेद का सर्वाधिक प्रसिद्ध ब्राह्मण है। इसके रचयिता 'महर्षि महीदास ऐतरेय' हैं। इसीकारण इसका नाम ऐतरेय–ब्राह्मण पड़ा। इसमें कुल चालीस अध्यायों का प्रयोग हुआ है। इस ब्राह्मण का मुख्य वर्ण्य–विषय 'सोमयाग' रहा है। इसके इक्तीस से तैंतीस अध्यायों में शुनःशेप का प्रसिद्ध आख्यान प्रयुक्त हुआ है। इसमें तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है, क्योंकि ऋग्वेद का सम्बन्ध 'होता' नामक 'ऋत्विक्' से है, इसलिए इस ब्राह्मण का सम्बन्ध भी 'होता' से ही रहा है। इसी के महत्त्वपूर्ण क्रिया-कलापों का वर्णन, इस ब्राह्मण–ग्रन्थ में विशेषरूप से उपलब्ध होता है।

(आ) **शांखायन ब्राह्मण**– इसके रचयिता महर्षि कौषीतकि रहे हैं, इसीलिए इसको 'कौषीतकि ब्राह्मण' भी कहते हैं।' इसमें कुल तीस अध्यायों का प्रयोग हुआ है, जिन्हें विभिन्न संख्या वाले खण्डों में विभाजित किया गया है। यद्यपि इसका मुख्य विषय सोमयाग रहा है, किन्तु इसमें अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास तथा चातुर्मास्य आदि इष्टियों का वर्णन भी किया गया है। लेखक द्वारा अनूदित तथा सम्पादित इसका प्रकाशन, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली से 2020 में दो खण्डों के अन्तर्गत 715 पृष्ठों में किया गया है।

(ख) **यजुर्वेदीय ब्राह्मण**– जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि यजुर्वेद के दो भाग हैं– शुक्ल–यजुर्वेद तथा कृष्ण–यजुर्वेद। इन दोनों के भी अलग–अलग ब्राह्मण–ग्रन्थों की रचना की गयी, जिसका विवरण इसप्रकार है–

अ) **शतपथ ब्राह्मण** (शुक्ल यजुर्वेदीय)– एक सौ अध्यायों में निबद्ध यह ब्राह्मण अत्यधिक प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण है। ध्यातव्य है कि शुक्ल–यजुर्वेद की दो शाखाओं, माध्यन्दिन और काण्व दोनों के ही 'शतपथ' नाम से अलग–अलग ब्राह्मण प्राप्त होते हैं। विषय की एकरूपता होते हुए भी, दोनों में वर्णक्रम और अध्यायों में पर्याप्त अन्तर रहा है। प्राचीन आख्यानों के विवेचन तथा यज्ञ–विधान की दृष्टि से इस ब्राह्मण का अत्यधिक महत्त्व है। विद्वद्परम्परा इसका प्रणेता याज्ञवल्क्य ऋषि को मानती आयी है।

आ) **तैत्तिरीय ब्राह्मण** (कृष्णयजुर्वेदीय)– इस ब्राह्मण के कुल तीस काण्डों में वाजपेय, राजसूय, सोमयाग, अग्न्याधान, सौत्रामणियाग और नक्षत्रेष्टि का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कृष्णयजुर्वेद के दूसरे ब्राह्मण प्राप्त नहीं होते हैं।

(ग) **सामवेदीय ब्राह्मण**– इसके ग्यारह ब्राह्मण उपलब्ध हैं, जिनमें 'ताण्ड्य', जिसे 'पंचविंश' भी कहा जाता है तथा 'सामविधान' और जैमिनीय--ब्राह्मण विशेषरूप से कथनीय हैं।

(i) **ताण्ड्य–ब्राह्मण**– इसी को 'प्रौढ़', 'पंचविंश' तथा 'महा–ब्राह्मण' भी कहा गया है। यह सामवेद की ताण्ड्य–शाखा का प्रमुख ब्राह्मण है। इसके 25 अध्यायों का मुख्य विवेच्य विषय 'सोमयाग' रहा है।

(ii) **सामविधान–ब्राह्मण**– इसके तीन प्रकरणों में पुत्र, ऐश्वर्य तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति के लिए, विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों का वर्णन किया गया है। साथ ही, कृष्छ्र तथा अतिकृच्छ्र आदि व्रतों का भी यहाँ विस्तार से उल्लेख हुआ है।

(iii) **षड्विंश–ब्राह्मण**– यह ब्राह्मण वस्तुतः 'पंचविंश' का ही परिशिष्ट है। इसमें पाँच प्रपाठक हैं, जिनमें अनेक प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों, आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन किया गया है।

(iv) **जैमिनीय–ब्राह्मण**–इसी का अन्य नाम 'तलवकार' भी है। इसमें यज्ञ तथा अनुष्ठानों के महत्त्व का विवेचन किया गया है। इसी ब्राह्मण के एक भाग को जैमिनीय–उपनिषद् ब्राह्मण अथवा गायत्र्यु–पनिषद् भी कहा जाता है। इनके अलावा सामवेद के अन्य ब्राह्मण इसप्रकार हैं–

(v) **अद्भुत्–ब्राह्मण**– षड्विंश के अन्तिम प्रपाठक को ही अद्भुत–ब्राह्मण भी कहा जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार के उत्पातों की शान्ति के विधान की चर्चा की गयी है।

(vi) **आर्षेय–ब्राह्मण**–यह तीन प्रपाठकों तथा 82 खण्डों में विभाजित है। इसका उपयोग वस्तुतः सामवेद की आर्षानुक्रमणी को जानने के लिए किया जाता है। साथ ही, इसमें सामगान के उद्भावक ऋषियों के नामों का भी संग्रह किया गया है।

(vii) **दैवत ब्राह्मण**–इसी को 'देवताध्याय' नाम से भी जाना जाता है। इसमें कुल तीन खण्ड हैं। छन्दों के निर्वचन और देवताओं

के वर्णन की दृष्टि से इस ब्राह्मण का अत्यधिक महत्त्व स्वीकार किया गया है।

(viii) **संहितोपनिषद्–ब्राह्मण**–पाँच खण्डों वाला यह ब्राह्मण पुनः सूत्रों में विभाजित किया गया है। सामगायन को प्रस्तुत करने की दृष्टि से इसका अत्यधिक महत्त्व माना जाता है।

(ix) **वंश–ब्राह्मण**– इसके तीन खण्डों में सामवेद के आचार्यों की वंशपरम्परा का विस्तार से उल्लेख किया गया है। इसीलिए इसे 'वंश–ब्राह्मण' संज्ञा प्रदान की गयी है।

(x) **छान्दोग्य–ब्राह्मण**–इसी का दूसरा भाग मन्त्र–ब्राह्मण भी है। इसमें दो ग्रन्थ निबद्ध हैं– छान्दोग्य–ब्राह्मण तथा छान्दोग्योपनिषद्। छान्दोग्य–ब्राह्मण में कुल दो प्रपाठक हैं तथा प्रत्येक में दो खण्डों का प्रयोग किया गया है। इसीप्रकार आठ प्रपाठकों में निबद्ध छान्दोग्यो–पनिषद् में अनेकानेक रोचक विषयों का वर्णन किया गया है। यही वस्तुतः प्रसिद्ध 'छान्दोग्योपनिषद्' भी है।

(घ)**अथर्ववेदीय–ब्राह्मण**– इस वेद का केवल एक गोपथ–ब्राह्मण ही उपलब्ध होता है–

(i)**गोपथ ब्राह्मण**–इसके रचयिता महर्षि 'गोपथ' को माना जाता है। अतः उन्हीं के नाम से इसे यह नामकरण दिया गया है। इसे दो भागों में विभाजित किया गया है–(क) पूर्वगोपथ तथा (ख) उत्तर गोपथ। इसके प्रथम भाग में पाँच तथा द्वितीय में कुल छः अध्याय हैं तथा सम्पूर्ण ब्राह्मण में ग्यारह प्रपाठक और 258 कण्डिकाएँ हैं। इसका अधिक भाग ऐतरेय तथा कौषीतकि ब्राह्मण से तथा कुछ भाग तैत्तिरीय, शतपथ एवं पंचविंश ब्राह्मणों से ग्रहण किया गया है।

इस दृष्टि से इसमें मौलिक अंश कम ही है। इसमें ब्रह्मा की प्रशंसा, विशेषरूप से की गयी है। इसके अलावा अथर्ववेद की उत्पत्ति, उसकी प्रशंसा, ओंकार तथा गायत्री की महिमा, ब्रह्मचारी के कर्तव्य और वेदाध्ययन की विधियों का कथन भी किया गया है। इसके पंचम

प्रपाठक में संवत्सर सत्र तथा अश्वमेध यज्ञों के विधान का उल्लेख किया गया है।

इसी के उत्तर–गोपथ में विभिन्न प्रकार के यज्ञों की प्रक्रियाओं का विवेचन किया गया है। वस्तुतः विषय विवेचन की दृष्टि से इसमें व्यवस्था का अभाव ही रहा है। इसके प्रथम प्रपाठक में यज्ञ के भाग हेतु रुद्र के युद्ध का, दूसरे में विभिन्न देवताओं के लिए अर्पित की जाने वाली हवियों का तथा तीसरे में वषट् और हिंकार के अर्थों के रहस्यों का तथा चतुर्थ, पंचम और षष्ठ प्रपाठक में प्रातः, मध्याह्न और सायंकालिक यज्ञों की धार्मिक–क्रियाओं का उल्लेख किया गया है। ध्यातव्य है कि यज्ञीय प्रक्रियाओं की स्थिति के आधार पर ही विद्वानों द्वारा इसे ब्राह्मण–ग्रन्थों तथा सूत्र–साहित्य के बीच की कड़ी के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है।

(ग)आरण्यक–ग्रन्थ– अरण्य में रहने वाले मुनियों तथा वान–प्रस्थियों ने ब्रह्म–तत्त्व और यज्ञादि के विषय में, जो चिन्तन किया, वही इन ग्रन्थों में निबद्ध किया गया है। इसी कारण इन्हें 'आरण्यक' संज्ञा प्रदान की गयी है।[1] आचार्य सायण का इस विषय में मन्तव्य है कि–

'अरण्य एव पाठ्यत्वाद् आरण्यमितीर्यते'

रचनाक्रम की दृष्टि से संहिताओं तथा ब्राह्मण–ग्रन्थों के बाद ही आरण्यकों का स्थान माना गया है। एक ओर ये ब्राह्मण–ग्रन्थों के परिशिष्ट हैं, तो दूसरी ओर इनमें उपनिषदों के बीज भी विद्यमान हैं। इसके अलावा इन्हें ब्राह्मण–ग्रन्थों का पूरक भी माना गया है, क्योंकि इनमें हमें ज्ञान–काण्ड तथा कर्म–काण्ड का समन्वय दृष्टिगत होता है। इन ग्रन्थों में हमें आत्मा, परमात्मा, ज्ञान, कर्म, उपासना तथा सृष्टि की उत्पत्ति आदि उपनिषदों के अनेक विषयों के साथ–साथ वैदिक–यागों के आध्यात्मिक एवं तात्त्विक चिन्तन के दर्शन भी होते हैं।

---

[1]. अरण्ये भवम्, इति आरण्यकम् अर्थात् अरण्य में उत्पन्न होने वाला ।

सैद्धान्तिक दृष्टि से तो जितनी संहिताएँ हैं, उतने ही ब्राह्मण तथा उतने ही उनके आरण्यक भी होने चाहिएँ, किन्तु वर्तमान समय में कुछ ही आरण्यक–ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जिनका संक्षेप में परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है–

(अ) **ऋग्वेदीय–आरण्यक**–ब्राह्मण–ग्रन्थों के समान ही ऋग्वेद के दो आरण्यक उपलब्ध हैं। जिनका यहाँ संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है–

(i) ऐतरेय आरण्यक– ऋग्वेद के ऐतरेय–ब्राह्मण के परिशिष्ट को ही 'ऐतरेय–आरण्यक' कहा जाता है। इसमें कुल अट्ठारह अध्याय हैं, जो पाँच भागों में विभक्त हैं। यह प्रत्येक भाग भी 'आरण्यक' कहा जाता है। इसमें उक्थ, प्राण–विद्या, महाव्रत, पदपाठ एवं क्रम–पाठों के वर्णन के साथ–साथ स्वर, व्यंजन के स्वरूप का भी कथन किया गया है। इसके प्रथम तीन भागों के रचयिता ऐतरेय ऋषि, चतुर्थ के आश्वलायन तथा पंचम के आचार्य शौनक माने गए हैं। इस आरण्यक पर शंकराचार्य और आचार्य सायण ने भाष्य किया है।

(ii) शांखायन आरण्यक– इसमें पन्द्रह अध्याय, 137 खण्डों में विभक्त हैं। इस आरण्यक पर भी आचार्य सायण और शंकराचार्य का भाष्य उपलब्ध है। इसी आरंण्यक के तीन से छः अध्यायों को कौषीतकि उपनिषद् कहा जाता है। इस आरण्यक का प्रमुख विवेच्य महाव्रत रहे हैं। इसमें काशी, मत्स्य, उशीनर, विदेह तथा कुरु–पांचालों का उल्लेख, इसे मध्यप्रदेश से सम्बद्ध करता है। इसके तेरहवें अध्याय में उपनिषदों के अनेक उद्धरण दिए गए हैं।[1]

(ब)यजुर्वेदीय–आरण्यक– शुक्ल यजुर्वेद का कोई आरण्यक उपलब्ध नहीं है। शतपथ ब्राह्मण की माध्यन्दिन और काण्व दोनों

---

[1] इस ग्रन्थ पर गत कई माह से लेखक द्वारा कार्य किया जा रहा है। 2020 में इसके हिन्दी–अनुवाद के साथ चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली से प्रकाशन की सम्भावना है।

शाखाओं के अन्त में स्थित छः अध्याय 'बृहदारण्यकोपनिषद्' कहे जाते हैं। बीच–बीच में यज्ञों के महत्त्व का कथन किए जाने से कुछ विद्वान् इसे 'आरण्यक' ही कहते हैं, किन्तु इसमें उपनिषदों का विषय वर्णित होने के कारण इसे 'उपनिषद्' मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। कृष्ण–यजुर्वेद के दो आरण्यक उपलब्ध हैं–

(i) **तैत्तिरीय–आरण्यक**– कृष्ण–यजुर्वेद की तैत्तिरीय–शाखा से सम्बद्ध होने के कारण, इसे इस नाम से कहा गया है। इसके 10 प्रपाठकों में 170 अनुवाक हैं। यज्ञोपवीत का सर्वप्रथम उल्लेख, इसी आरण्यक में मिलता है। अग्नि की उपासना, स्वाध्याय, पंचमहायज्ञ, इष्टिका–चयन, अभिचार–मन्त्र एवं पितृमेध आदि का इसमें वर्णन हुआ है। इसके अलावा इसमें कुरुक्षेत्र, खाण्डव तथा पांचाल आदि प्रदेशों के नामों का भी कथन हुआ है। इसके 10वें प्रपाठक को 'नारायणीय उपनिषद्' कहते हैं। इस आरण्यक में 'नरकों' का वर्णन भी किया गया है तथा उपनिषदों के लिए यहाँ 'श्रमण' शब्द का प्रयोग हुआ है।

(ii) **मैत्रायणी–आरण्यक**– इसका सम्बन्ध कृष्ण–यजुर्वेद की मैत्रायणी–संहिता से है। इसलिए इसे मैत्रायणी–उपनिषद् भी कहा जाता है। इसमें आरण्यक और उपनिषद् का अंश मिश्रित है। यह आरण्यक सात प्रपाठकों में विभाजित किया गया है।

स) **सामवेदीय–आरण्यक**– इससे सम्बन्धित दो आरण्यक उपलब्ध हैं–

(i) **तवलकार–आरण्यक**– इसी का दूसरा नाम 'जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण' या 'तवलकार–आरण्यक' भी है। इसमें ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् तीनों का मिश्रण उपलब्ध होता है। इसमें कुल चार अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय अनुवाकों में विभक्त है। इसके चतुर्थ अध्याय के दसवें अनुवाक को ही 'केन' उपनिषद् के नाम से जाना जाता है। इसमें सामवेद के अनेक मन्त्रों की सुन्दर व्याख्या की गयी है।

(ii) **छान्दोग्य–आरण्यक**–डॉ. सत्यव्रत सामश्रमी ने इसे 'सामवेद आरण्यक संहिता' के नाम से प्रकाशित किया है।

द) **अथर्ववेदीय–आरण्यक**–अथर्ववेद का कोई भी आरण्यक उपलब्ध नहीं है।

(घ) अनुक्रमणी–साहित्य–वेदांगों के अतिरिक्त वेदों से सम्बद्ध अनुक्रमणिकाओं की भी रचना की गयी। जिनमें ऋषियों, छन्दों, देवताओं आदि विषयों में विस्तारपूर्वक सूचियाँ दी गयी हैं। अनुक्रमणियों को वस्तुतः वैदिक मन्त्रों की क्रमबद्ध सूचियाँ भी कहा जा सकता है। इनके रचयिताओं में आचार्य कात्यायन एवं आचार्य शौनक का नाम विशेषरूप से ग्रहण किया जा सकता है। संहिता–ग्रन्थों के अनुसार इनका विवरण इसप्रकार है–

(i) **ऋक्सर्वानुक्रमणी–** इसी को 'सर्वानुक्रमणी' भी कहते हैं। इसका सम्बन्ध ऋग्वेद से है। आचार्य कात्यायन ने इनका सूत्ररूप में लेखन किया है। इसमें ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त का पहला पद, ऋचाओं की संख्या, सूक्तों के ऋषियों, उनके गोत्रों, देवताओं तथा छन्दों का उल्लेख किया गया है। इसकी रचना आचार्य शौनक के पश्चात्, किन्तु आचार्य पाणिनि से पहले हुई है। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् आचार्य उव्वट ने इसपर भाष्य की संरचना की तथा षड्गुरुशिष्य ने इसकी 'वेदार्थदीपिका' नाम से वृत्ति का लेखन किया।

ऋग्वेद की रक्षा के लिए आचार्य शौनक ने– आर्षानुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी, देवतानुक्रमणी, अनुवाकानुक्रमणी, सूक्तानुक्रमणी, ऋग्विधान, पादविधान, बृहद्देवता, ऋक्प्रातिशाख्य तथा शौनकस्मृति आदि ग्रन्थों की रचना की।

(ii) **ऋक्यजुःसर्वानुक्रमसूत्र–** यह यजुर्वेद की अनुक्रमणियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। सूत्ररूप में निबद्ध तथा पाँच अध्यायों में विभक्त इसकी रचना आचार्य कात्यायन ने की। इसमें शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन–शाखा के देवता, ऋषि एवं छन्दों का विस्तृत परिचय दिया

गया है। यज्ञ–विधान एवं अनुष्ठानों की भी इसमें चर्चा की गयी है। इस पर महायाज्ञिक 'श्रीदेव' द्वारा विरचित भाष्य भी मिलता है।

इसके अलावा कात्यायन द्वारा विरचित कुछ परिशिष्ट ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं, जिनमें निगम परिशिष्ट, प्रवराध्याय और चरणव्यूह विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से निगम परिशिष्ट को शुक्ल–यजुर्वेद के पर्यायवाची शब्दों का कोश कहा जा सकता है, जबकि प्रवराध्याय में ब्राह्मण–कुलों की सूची दी गयी है। चरणव्यूह में वेदों की सभी शाखाओं का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

(iii) **याजुष् सर्वानुक्रमणी–** आचार्य यास्क ने कृष्ण–यजुर्वेद को आधार बनाकर इसकी संरचना की। इसीप्रकार एक 'काण्डानुक्रमणी' भी मिलती है, जिसमें तैत्तिरीय–संहिता के काण्डों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

(iv)**सर्वानुक्रमणी–** अथर्ववेद की अनुक्रमणियों में इसका सर्वाधिक महत्त्व है। इसके अन्तर्गत अथर्ववेद के 19 काण्डों तक प्रत्येक काण्ड के सूक्तों, मन्त्रों, ऋषियों, देवताओं तथा छन्दों का पूर्ण विवरण प्रदान किया गया है।

(v) **आश्वलायनी अनुक्रमणी–** इसके प्रणेता आचार्य शौनक हैं। इसमें अथर्ववेद के बीसवें काण्ड के सम्बन्ध में मन्त्र, ऋषि, देवता, छन्दादि का विस्तृत विवरण दिया गया है। इसके अतिरिक्त 'पंच पटालेका', 'दन्त्योष्ठविधि', 'अथर्वपरिशिष्ट' एवं 'चरणव्यूहसूत्र' आदि ग्रन्थ भी अनुक्रमणी साहित्य के अन्तर्गत परिगणित हैं।

(vi) सामवेद की कोई भी अनुक्रमणी उपलब्ध नहीं है, किन्तु इस वेद की अनुक्रमणियों के प्रयोजनों को सिद्ध करने के लिए लिखे गए, कुछ ग्रन्थ अवश्य उपलब्ध होते हैं, जिनमें **कल्पानुपद–सूत्र,** उपग्रन्थ–सूत्र, अनुपद–सूत्र, निदान–सूत्र, उपनिदान–सूत्र, पंचविधान–सूत्र, लघु–ऋक्तन्त्र संग्रह तथा साम सप्त–लक्षण विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

(ङ) **उपनिषद् ग्रन्थ**–आरण्यकों के बाद उपनिषदों का स्थान है।

(i) **उपनिषद् का अभिप्राय** – उप एवं नि उपसर्गपूर्वक √सद् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर उपनिषद् शब्द निष्पन्न होता है। इसका अभिप्राय है– 'तत्त्वज्ञान के लिए गुरु के निकट विनम्रतापूर्वक बैठना' उपनिषदों में तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। उपनिषद् का एक अर्थ 'ब्रह्मविद्या' भी है, क्योंकि इन ग्रन्थों में 'ब्रह्मविद्या' के विषय में विस्तृत चर्चा की गयी है, इसलिए इन्हें 'उपनिषद्' कहा गया।

(ii) **उपनिषदों का महत्त्व**– भारतीय संस्कृति के अनुसार व्यक्ति के जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय का अत्यधिक महत्त्व है। पुनरपि इनमें भी मोक्ष को प्राप्त करना, उसके जन्म का मुख्य उद्देश्य रहा है, जिसकी प्राप्ति में उपनिषद् ही हमारा मार्गदर्शन करते हैं। इस दृष्टि से उपनिषदों का महत्त्व निर्विवाद है।

वस्तुस्थिति तो यह है कि वर्तमान भौतिकवादी युग में जब व्यक्ति अनेकानेक परेशानियों से जूझ रहा है, उपनिषद् साहित्य का अध्ययन ही उसे शान्ति प्रदान करने वाला है। इसके अतिरिक्त हमारी अनेकानेक जिज्ञासाओं का शमन भी ये उपनिषद् ग्रन्थ ही करते हैं। जैसे– मृत्यु के बाद व्यक्ति का क्या होता है? व्यक्ति के जन्म का क्या उद्देश्य है? क्या व्यक्ति का मरने के बाद फिर से जन्म होता है? और क्यों? क्या हम सांसारिक दुःखों से हमेशा के लिए छुटकारा प्राप्त कर सकते हैं? यदि हाँ तो उसे किसप्रकार प्राप्त किया जा सकता है? व्यक्ति के जीवन का वास्तविक लक्ष्य क्या है? आदि–आदि।

भारतीय–दर्शन के मूल आधार उपनिषदों के अध्ययन से ही हमें उक्त सभी जिज्ञासाओं का समाधान सहज ही हो जाता है। वस्तुस्थिति तो यह है कि भारतीय ज्ञानगरिमा के उत्कृष्ट प्रतीक ये उपनिषद् ही हैं। यही कारण है कि वेदों को प्रमाणरूप में स्वीकार न

करने वाले, नास्तिक दर्शनों पर भी उपनिषदों का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त प्रमुख भारतीय दर्शन, सांख्य, योग, पूर्व–मीमांसा, उत्तर–मीमांसा (वेदान्त), न्याय, वैशेषिक आदि षड्दर्शनों का तो उद्भव ही उपनिषदों से हुआ है। यही कारण है कि इन सभी दर्शनों में अपने कथ्य अर्थात् सिद्धान्त की पुष्टि के लिए पद–पद पर उपनिषद् वाक्यों को प्रमाणरूप में प्रस्तुत किया गया है।

वस्तुतः न केवल आत्म–ज्ञान की दृष्टि से, अपितु व्यक्ति के कर्तव्य निर्धारण की दृष्टि से भी उपनिषदों की महत्ता को मुक्त–कण्ठ से स्वीकार किया जा सकता है। जिससे न केवल मानव, अपितु समाज का भी हित–साधन सम्भव है। जैसे–

तैत्तिरीय उपनिषद् का कथन है कि– 'हमेशा ही सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से प्रमाद मत करो, सत्य तथा धर्म का कभी भी अपने जीवन में परित्याग न करो, उन्नति के साधन तथा शुभ–कर्मों का कभी परित्याग नहीं करो तथा निर्दोष–कर्मों को करते हुए, सदा ही अपनी सामर्थ्य के अनुसार श्रद्धापूर्वक दान दो।'

इसप्रकार की शिक्षा हमें उपनिषदों में पद–पद पर देखने को मिलती है। इस आधार पर कहा जा सकता है, हमारे उपनिषद् न केवल ज्ञान का भण्डार हैं, अपितु हमारी सामाजिक व्यवस्था में भी इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसके अलावा यदि हम भारतीय संस्कृति के सही स्वरूप के दर्शन करना चाहते हैं, तो हमें उपनिषदों का ही मुखापेक्षी होना पड़ेगा। वस्तुतः उपनिषदों को भारतीय–संस्कृति के आध्यात्मिक प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

यही कारण है कि न केवल भारतीय, अपितु विदेशी विद्वानों ने भी उपनिषदों के ज्ञान–भण्डार की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। जिनमें विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द, सन्त विनोबाभावे, डॉ. राधाकृष्णन् आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय है, जबकि विदेशी विद्वानों

में दाराशिकोह, शॉपेन हॉवर, मैक्समूलर, मैक्डॉनल, पाल डायसन, फेडरिक श्लेगेल, प्रो. जी. आर्क, प्रो. हूम आदि का कथन किया जा सकता है।[1]

फ्रेंच भाषा के विद्वान् 'ड्यूनसा' ने तो अनेक वर्षों तक भारत में रहकर, संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करके, उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में अनुवाद भी किया है, जिसे उपनिषदों के महत्त्व एवं उपयोगिता की दृष्टि से ही देखा जा सकता है।

(iii) **उपनिषदों का रचना काल–**

उपनिषदों की रचना किस काल–खण्ड में हुई, इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि इनकी रचना का आरम्भ आरण्यकों के समय से ही हो गया था, किन्तु आरण्यकों का रचना–काल भी अनिश्चित होने के कारण, उपनिषदों के काल–निर्धारण में पर्याप्त कठिनाई होती है। पुनरपि उपनिषदों की भाषा तथा विचारों के आधार पर विद्वानों ने कुछ अनुमान अवश्य लगाया है। जिसे हम इसप्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

(1) अष्टाध्यायी के अध्ययन से प्रतीत होता है कि आचार्य पाणिनि उपनिषदों से परिचित रहे हैं, क्योंकि उन्होंने एक सूत्र में उपनिषद् शब्द का प्रयोग किया है।[2] इसीप्रकार ग्रन्थवाची उपनिषद् शब्द का प्रयोग भी अष्टाध्यायी में हुआ है।[3] इसके अलावा अष्टाध्यायी के अन्य सूत्र में[4] आचार्य पाणिनि ने छान्दोग्य शब्द से आम्नात अर्थ में छान्दोग्य पद को निष्पन्न बताया है, जिसे स्पष्टरूप से उपनिषद् से सम्बद्ध कहा जा सकता है।[5] उनका समय विद्वानों ने 500 ई.पू.

---

[1] . द्रष्टव्य, लेखक द्वारा अनूदित कठोपनिषद् (प्रथम अध्याय) प्रकाशक, धर्म–नीराजना, प्रकाशन, दिल्ली–7। भूमिका–पृष्ठ, 13–14 ।

[2] . जीविकोपनिषदावौपम्ये। अष्टाध्यायी– 1/4/79 ।

[3] . अष्टाध्यायी – 4/3/73 ।

[4] . अष्टाध्यायी– 4/3/129 ।

[5] . संस्कृत साहित्य का इतिहास, गैरोला, पृष्ठ–146।

में दाराशिकोह, शॉपेन हॉवर, मैक्समूलर, मैक्डॉनल, पाल डायसन, फेडरिक श्लेगेल, प्रो. जी. आर्क, प्रो. ह्यूम आदि का कथन किया जा सकता है।[1]

फ्रेंच भाषा के विद्वान् 'ड्यूनसा' ने तो अनेक वर्षों तक भारत में रहकर, संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करके, उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में अनुवाद भी किया है, जिसे उपनिषदों के महत्त्व एवं उपयोगिता की दृष्टि से ही देखा जा सकता है।

(iii) उपनिषदों का रचना काल–

उपनिषदों की रचना किस काल–खण्ड में हुई, इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि इनकी रचना का आरम्भ आरण्यकों के समय से ही हो गया था, किन्तु आरण्यकों का रचना–काल भी अनिश्चित होने के कारण, उपनिषदों के काल–निर्धारण में पर्याप्त कठिनाई होती है। पुनरपि उपनिषदों की भाषा तथा विचारों के आधार पर विद्वानों ने कुछ अनुमान अवश्य लगाया है। जिसे हम इसप्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

(1) अष्टाध्यायी के अध्ययन से प्रतीत होता है कि आचार्य पाणिनि उपनिषदों से परिचित रहे हैं, क्योंकि उन्होंने एक सूत्र में उपनिषद् शब्द का प्रयोग किया है।[2] इसीप्रकार ग्रन्थवाची उपनिषद् शब्द का प्रयोग भी अष्टाध्यायी में हुआ है।[3] इसके अलावा अष्टाध्यायी के अन्य सूत्र में[4] आचार्य पाणिनि ने छान्दोग्य शब्द से आम्नात-अर्थ में छान्दोग्य पद को निष्पन्न बताया है, जिसे स्पष्टरूप से उपनिषद् से सम्बद्ध कहा जा सकता है।[5] उनका समय विद्वानों ने 500 ई.पू.

---

1. द्रष्टव्य, लेखक द्वारा अनूदित कठोपनिषद् (प्रथम अध्याय) प्रकाशक, धर्म–नीराजना, प्रकाशन, दिल्ली–7। भूमिका–पृष्ठ, 13–14 ।
2. जीविकोपनिषदावौपम्ये। अष्टाध्यायी– 1/4/79 ।
3. अष्टाध्यायी – 4/3/73 ।
4. अष्टाध्यायी– 4/3/129 ।
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, गैरोला, पृष्ठ–146।

स्वीकार किया है।[1] इसलिए उपनिषदों का काल इससे पूर्व मानना उचित प्रतीत होता है।

(2) उपनिषदों की भाषा वैदिक संस्कृत की अपेक्षा लौकिक संस्कृत से अधिक निकट होने से, इन्हें रामायण तथा महाभारत का पूर्ववर्ती मानना उचित प्रतीत होता है।

(3) प्रसिद्ध विदेशी विद्वान् मैक्डॉनल ने उपनिषदों का रचना काल 600 ई.पू. के लगभग माना है।

(4) इसीप्रकार विदेशी विद्वान् लुडविग का मानना है कि उपनिषदों में प्रतिपादित ज्ञान को निश्चय ही, आज से तीन हजार वर्ष पुराना होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त गौतम बुद्ध ने हिंसा के मार्ग का अवलम्बन करने वाले यज्ञों का विरोध किया था। इसलिए उपनिषदों की रचना इससे भी पर्याप्त पूर्व में मानना न्यायसंगत प्रतीत होता है। महात्मा बुद्ध का समय छठी शताब्दी ईसा पूर्व माना जाता है।

(5) लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने 'आरोयन' नामक अपने प्रबन्ध में पश्चिमी विचारकों का खण्डन करते हुए, गणित एवं ज्योतिष शास्त्र के आधार पर उपनिषदों के प्रणयन को ई.पू. 1880 से 1680 ई. पू. के मध्य स्वीकार किया है।

(6) बालगंगाधर तिलक के अनुयायी विद्वानों ने उपनिषदों की रचना 16 वीं शती ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व के मध्य मानी है।

(7) इस प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि उपनिषद् जैसे उत्कृष्ट एवं विशाल साहित्य को किसी भी दृष्टि से दस, बीस वर्षों की संरचना स्वीकार नहीं किया जा सकता है, अपितु यह तो भारतीय ऋषियों की शताब्दियों की साधना का परिणाम है। ब्राह्मण–काल में

---

[1] (क) संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, डॉ. सूर्यकान्त, प्रकाशक– ओरियण्ट लाँगमैन, पृष्ठ–319।

(ख) वैदिक साहित्य और संस्कृति, आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक– शारदा मन्दिर काशी। पृष्ठ–233।

जब यज्ञ–विषयक कर्मकाण्डों की जटिलता में वृद्धि हुई तथा उसमें हिंसा ने अपना प्रमुख स्थान बना लिया, तो इसी हिंसा एवं जटिलता को दूर करने के लिए, ऋषियों ने विचार किया तथा सत्य का चिंतन किया।

यही सत्य हमें उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। जिसकी निर्माणावधि को कम से कम सात–आठ सौ वर्षों या इससे भी अधिक अन्तराल में स्वीकार करना न्यायोचित प्रतीत होता है। इस दृष्टि से बालगंगाधर तिलक की उपनिषदों की संरचना विषयक मान्यता अधिक उपयुक्त एवं वैज्ञानिक प्रतीत होती है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर उपनिषदों की रचना की पूर्वसीमा 16वीं शती ईसा पूर्व से लेकर 600 ईसा पूर्व के मध्य मानना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

(iv) **उपनिषदों की संख्या** – विद्वानों ने इसकी संख्या 108 से लेकर 200 तक मानी है। सन् 1948 में निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से 120 उपनिषदों का संग्रह, मूलरूप में प्रकाशित किया गया, किन्तु इसमें मात्र 13 उपनिषद् ही प्रमुख मानी गयी हैं। शंकराचार्य आदि विद्वानों ने 11 उपनिषदों को प्रामाणिक मानकर, केवल उन्हीं पर भाष्य किया है। शेष उपनिषदों को इन्होंने प्रामाणिक नहीं माना है।

(v) **वेदानुसार उपनिषदों का वर्गीकरण व संक्षिप्त परिचय** –

अतः वेदों के अनुसार इन तेरह उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है–

(अ) ऋग्वेदीय उपनिषद्– ऋग्वेद की कुल दो उपनिषद् प्राप्त हैं–

(i) **ऐतरेय उपनिषद्**–यह उपनिषद् सर्वाधिक प्राचीन मानी गयी है। ऐतरेय आरण्यक के चतुर्थ अध्याय से लेकर षष्ठ अध्याय तक के अंग को 'ऐतरेय उपनिषद्' के नाम से जाना जाता है। इसप्रकार

इसमें केवल तीन अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः सृष्टि, जीव और ब्रह्म इन तीन विषयों का विवेचन किया गया है।

(ii) **कौषीतकि उपनिषद्**–आकार की दृष्टि से इसका स्थान बृहदारण्यक तथा छान्दोग्योपनिषद् के पश्चात् तीसरा है। इसमें कुल चार अध्याय हैं। इसके प्रथम अध्याय में पितृयान और देवयान की, द्वितीय और तृतीय अध्यायों में विशुद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों की विस्तृत चर्चा की गयी है तथा चतुर्थ अध्याय में प्रतर्दन, ब्रह्मविद्या को इन्द्र से ग्रहण करते हैं। इसी अध्याय में 'प्राणतत्त्व' का अत्यधिक उदात्त एवं विस्तार से वर्णन किया गया है।

(ब) **यजुर्वेदीय उपनिषद्**–यजुर्वेद की निम्न उपनिषद् हैं–

(i) **बृहदारण्यकोपनिषद्**–आकार और प्राचीनता की दृष्टि से इसका प्रथम स्थान है। इसमें छः अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय ब्राह्मणों में विभाजित किया गया है, ब्राह्मण से अभिप्राय यहाँ खण्डों से है। सृष्टि और ब्रह्म इस उपनिषद् का प्रमुख विवेच्य है। उस युग के सबसे बड़े तत्त्वज्ञानी महर्षि याज्ञवल्क्य के विचारों के निबद्ध होने से इस उपनिषद् का अत्यधिक महत्त्व है। इसमें आत्मा का स्वरूप, ब्रह्म की सर्व–व्यापकता, जीवात्मा की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था, जन्म, मरण और मोक्ष इन छः अवस्थाओं का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। पुनर्जन्म का सर्वप्रथम उल्लेख, इसी उपनिषद् में किया गया है। इसकी भाषा, सरल और संवादात्मक प्रयुक्त हुई है।

(ii) **श्वेताश्वतरोपनिषद्**– इसमें कुल छः अध्याय हैं तथा प्रमुख वर्ण्यविषय शैवधर्म एवं सांख्य तथा योगदर्शन रहा है। इसके प्रथम अध्याय में शैवधर्म, द्वितीय में योगदर्शन तथा तीसरे से लेकर पाँचवें अध्याय में शैवदर्शन के साथ, सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। इसके अन्तिम अध्याय में गुरुमहिमा का वर्णन हुआ है। इसे वस्तुतः सांख्य और वेदान्त की आरम्भिक स्थिति का विवेचक उपनिषद् कहा जा सकता है।

(iii) **मैत्रायणीयोपनिषद्–** सात प्रपाठकों में विभक्त यह उपनिषद् मुख्यरूप से गद्यात्मक है, किन्तु कहीं–कहीं अत्यल्प रूप में पद्यों का प्रयोग भी हुआ है। दर्शन के विकासक्रम को समझने में यह उपनिषद् महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है। इसमें सांख्यदर्शन के तत्त्व 'योग' के छः अंगों तथा हठयोग के सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन किया गया है। ईशोपनिषद् तथा कठोपनिषद् के दो–दो उद्धरण इसमें मिलने के कारण, विद्वानों ने इसे उन दोनों उपनिषदों की अपेक्षा अर्वाचीन माना है।

(iv) **ईशोपनिषद्–** यह उपनिषद् यजुर्वेद संहिता की वाजसनेयी शाखा का 40 वाँ अध्याय है। इसका आरम्भ 'ईश' पद से होने के कारण, इसे 'ईशोपनिषद्' कहा जाता है। इसमें कुल 18 पद्य हैं, जिनमें कर्म और उपासना के रहस्य का, ज्ञान की दृष्टि से अन्वेषण किया गया है। साथ ही, इसमें निष्काम–कर्म की महत्ता, ब्रह्म का स्वरूप, विद्या, अविद्या, सम्भूति तथा असम्भूति का प्रतिपादन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया गया है।

(v) **कठोपनिषद्–** कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बन्धित होने के कारण, इसे 'कठोपनिषद्' कहते हैं। इसमें केवल दो अध्याय हैं तथा प्रत्येकं अध्याय तीन–तीन वल्लियों में विभक्त है। इसमें आत्म विद्या का सुन्दरतम ढंग से प्रतिपादन किया गया है। अन्य उपनिषदों के समान ही इसका प्रतिपाद्यं भी जीव, ब्रह्म, जगत्, सत्, असत्, जन्म–मृत्यु, बन्धन और मोक्ष आदि का विवेचन करना ही रहा है। यह अत्यधिक लोकप्रिय उपनिषद् है।

(vi) **तैत्तिरीयोनिषद्–** यजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक के सप्तम से नवम कुल तीन प्रपाठक ही, इस उपनिषद् के नाम से जाने जाते हैं। इनमें कुल तीन वल्लियाँ हैं– शिक्षा, ब्रह्मानन्द तथा भृगु–वल्ली। शिक्षावल्ली में चित्त–शुद्धि, गुरुकृपा प्राप्त करने के साधन, गुरु–शिष्य के शिष्ट–सम्बन्ध, उपासना के प्रकार, शिक्षा के प्राचीन आदर्श एवं

स्नातक का आचरण, इन सभी विषयों का विस्तृत एवं प्रभावी वर्णन किया गया है। **द्वितीय वल्ली में ब्रह्म**–विद्या का तथा अन्तिम वल्ली के अन्तर्गत ब्रह्म–प्राप्ति के विशिष्ट साधन, पंचकोश का विस्तृत विवेचन किया गया है।

(स) सामवेदीय उपनिषद्– सामवेद की केवल दो उपनिषद् ही उपलब्ध होती हैं–

(i) **छान्दोग्योपनिषद्**– आठ प्रपाठक और 147 खण्डों में विभक्त, आकार की दृष्टि से इसका उपनिषदों में दूसरा स्थान है। छान्दोग्य ब्राह्मण के अन्तिम आठ अध्यायों को ही 'छान्दोग्योपनिषद्' कहा जाता है। इसमें आत्मा, परमात्मा, शरीर की अनित्यता और प्रकृति का सुन्दर विवेचन किया गया है। इसके चतुर्थ अध्याय में 'सत्यकाम जाबाल' की कथा के माध्यम से ब्रह्म–ज्ञान का आकर्षक उपदेश दिया गया है। षष्ठ अध्याय में उद्दालक आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्मविद्या का ज्ञान कराया है।

सप्तम अध्याय में नारद और सनत्कुमार की कथा के माध्यम से प्राण का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इसीप्रकार अष्टम अध्याय में, आत्मा की तीन अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तथा उसे प्राप्त करने के उपायों को, इन्द्र–विरोचन की कथा के माध्यम से, ब्रह्म की सर्वोच्च शक्तिमत्ता का उल्लेख किया गया है।

(ii) **केनोपनिषद्**– इस उपनिषद् के आरम्भ में 'केन' पद का प्रयोग होने के कारण, इसे 'केनोपनिषद्' कहा गया है। यह सामवेद की तलवकार शाखा से सम्बन्धित है। इसलिए इसका दूसरा नाम 'तवलकार' उपनिषद् भी है। इसमें चार खण्ड हैं, इसके प्रथम खण्ड में सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म के अन्तर का प्रतिपादन किया गया है। द्वितीय खण्ड में ब्रह्म के रहस्यमय स्वरूप का विवेचन तथा अन्तिम दो खण्डों में उमा–हैमवती के आख्यान के माध्यम से ब्रह्म की सर्वोच्च शक्तिमत्ता का उल्लेख किया गया है।

(द) अथर्ववेदीय उपनिषद्–अथर्ववेद की निम्न उपनिषद् हैं–

(i) **प्रश्नोपनिषद्**– इसमें ब्रह्म–विद्या की जिज्ञासा से युक्त छः ऋषि, महर्षि पिप्पलाद से अध्यात्म विषय पर, अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हैं। इसलिए इसे 'प्रश्नोपनिषद्' के नाम से जाना गया है। महर्षि पिप्पलाद ने ऋषियों के प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषा में प्रदान किए हैं। सरलता, इस उपनिषद् की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। महर्षियों के प्रश्नों के अन्तर्गत– प्रजा की उत्पत्ति, देवों की संख्या, उनकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन, प्राणों की उत्पत्ति, उनके आवागमन का प्रकार, ओंकार की उपासना, षोडश कला सम्पन्न पुरुष आदि प्रमुख विषय हैं। इसमें अक्षरब्रह्म को जगत् की प्रतिष्ठा बताया गया है।

(ii) **मुण्डकोपनिषद्**– इसमें तीन मुण्डक हैं तथा प्रत्येक मुण्डक दो खण्डों में विभाजित है। 'मुण्डक' शब्द का अभिप्राय है–घुटे हुए सिर वाला। ऐसा प्रतीत होता है कि मुण्डन हुए व्यक्तियों के लिए इसका निर्माण किया गया। ब्रह्मविद्या का उपदेश इस उपनिषद् का प्रमुख विवेच्य है। यहाँ ब्रह्म का ज्ञान कराने वाली विद्या को 'परा' तथा वेद–वेदांग आदि को 'अपरा–विद्या' कहा गया है। 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखायाः' इत्यादि सांख्यदर्शन से सम्बन्धित प्रसिद्ध मन्त्र, इसी उपनिषद् का है, जिसके आधार पर सांख्यदर्शन में जीवात्मा को भोक्ता तथा परमात्मा को तटस्थ साक्षी के रूप में प्रतिपादित किया गया है।

(iii) **माण्डूक्योपनिषद्**– आकार में छोटा होते हुए भी, यह उपनिषद् सैद्धान्तिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें केवल 12 वाक्य प्रयुक्त हुए हैं। ओंकार शब्द की यहाँ अत्यन्त मार्मिक व्याख्या की गयी है। इसमें चैतन्य की चार अवस्थाओं, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और चैतन्य तथा आत्मा की वैश्वानर, तैजस्, प्राज्ञ और शिव आदि चार स्थितियों का प्रभावी वर्णन किया गया है। इसी उपनिषद् के आधार पर गौड़पादाचार्य ने चार खण्डों वाली, माण्डूक्यकारिका की संरचना की। इसे विद्वानों ने मायावादी वेदान्त को प्रतिष्ठित करने वाला माना है।

ध्यातव्य है कि उक्त उपनिषदों में ऐतरेय, कौषीतकि, तैत्तिरीय, मैत्रायणी, बृहदारण्यकोपनिषद् तथा छान्दोग्य आदि उपनिषद् ही अत्यधिक प्राचीन माने गए हैं।

(च) वेदांग– वेदों के वास्तविक अर्थ को जानने के लिए उपयोगी अंगों को 'वेदांग' कहा जाता है। इनके द्वारा मन्त्रों के अर्थों तथा उनकी व्याख्या एवं यज्ञादि में उनके विनियोग आदि का ज्ञान होता है। आरम्भिक काल में इनकी स्थिति वेदों के अध्ययन में सहयोगी के रूप में थी, किन्तु बाद में स्वतन्त्र अंगों के रूप में इनका विकास हुआ। यहाँ तक हमने वैदिक साहित्य के विषय में अत्यन्त संक्षेप में जानकारी प्रस्तुत की। अब हम, हमारे विवेच्य वेदों के महत्त्वपूर्ण अंग, षड् वेदांगों के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

(अ) वेदांगों की संख्या– इसप्रकार कुल मिलाकर छः वेदांगों[1] का प्रणयन किया गया। जिनके नाम इसप्रकार हैं–

(क) **शिक्षा** (ख) **व्याकरण** (ग) **छन्द**

(घ) **ज्योतिष** (ङ) **निरुक्त** (च) **कल्प** ।

इनका हम यहाँ संक्षेप में परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं–

(क) **शिक्षा–** यह वेदांग, वेदरूपी पुरुष का 'घ्राण' माना गया है।[2] आचार्य सायण ने इसे इसप्रकार परिभाषित किया है–

स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा[3]

वेदों में स्वरों के शुद्ध उच्चारण का अत्यधिक महत्त्व है। शिक्षा ग्रन्थों में स्वर–वर्णों के शुद्ध उच्चारण की शिक्षा प्रदान की गयी है। प्रातिशाख्य ग्रन्थों में इस विषय का विशेष वर्णन उपलब्ध होता है। वेद की प्रत्येक शाखा से सम्बद्ध, नियमों का उल्लेख करने के कारण, इन्हें प्रातिशाख्य कहा गया है। मुख्य प्रातिशाख्य ग्रन्थों में–ऋक्प्रातिशाख्य,

---

1. शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदास्याहुर्मनीषिणः।।
2. शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य– पाणिनीय शिक्षा।
3. ऋक्भाष्यभूमिका, पृष्ठ– 49 ।

शुक्ल–यजुः प्रातिशाख्य, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, साम–प्रातिशाख्य, अथर्व–प्रातिशाख्य, विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। पुष्पसूत्र और पंचविधसूत्र भी सामवेद के प्रातिशाख्य हैं। इसके अलावा पाणिनीय–शिक्षा, याज्ञवल्क्य शिक्षा, व्यास–शिक्षा, नारद–शिक्षा, माण्डूकी–शिक्षा, भारद्वाज–शिक्षा, वसिष्ठ–शिक्षा, पाराशर–शिक्षा आदि 34 शिक्षा–ग्रन्थ भी इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं।

(ख) व्याकरण– इसे वेदरूपी पुरुष का मुख माना गया है।[1] 'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति, व्याकरणम्' परिभाषा के अनुसार व्याकरण द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति का विधान किया गया है, जो किसी भी भाषा का आवश्यक अंग होता है। आचार्य कात्यायन एवं महा–भाष्यकार पतंजलि ने व्याकरण के पाँच प्रयोजनों का उल्लेख किया है– **'रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनम्।'**

यहाँ **रक्षा** से अभिप्राय वेदों की रक्षा से है। **ऊह,** से अभिप्राय नए– नए पदों की परिकल्पना करना, **आगम** से अभिप्राय निष्कामभाव से वेदों का अध्ययन करना तथा **लघु** शब्द से संक्षेप में शब्दज्ञान प्राप्त करना एवं **असंदेह** से अभिप्राय संदेहों के निवारण से ग्रहण करना चाहिए। उपलब्ध लगभग दस प्रातिशाख्य ग्रन्थों तथा ऋक्तन्त्र आदि सात अन्य वैदिक व्याकरण के ग्रन्थों में लगभग 59 आचार्यों ने इस वेदांग को पुष्पित एवं पल्लवित करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है।

(ग) छन्द– वेद–मन्त्रों के ठीक–ठीक उच्चारण तथा ज्ञान हेतु छन्दों की जानकारी आवश्यक है। 'छन्दांसि छादनात्' परिभाषा के अनुसार– 'छन्द' मन्त्र के अभिप्राय को आच्छादित करके, उसे समष्टि रूप में प्रस्तुत करते हैं। वेद में वार्णिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। वेद मन्त्रों के प्रत्येक पाद अर्थात् चरण में वर्णों की निश्चित संख्या होती है। ऋक्प्रातिशाख्य के तीन (16, 17, 18) पटलों में ऋग्वेद के छन्दों

---

[1] .मुखं व्याकरणं स्मृतम्। पाणिनीय शिक्षा ।

का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसीप्रकार पिंगल का छन्दःसूत्र, कात्यायन की छन्दोऽनुक्रमणी तथा सर्वानुक्रमणी विशेषरूप से उल्लेखनीय छन्दविषयक ग्रन्थ हैं।

(घ) **निरुक्त**—वेदों के अर्थों को जानने के लिए, 'निरुक्त' नामक 'वेदांग' का विशेष महत्त्व है। इसमें वेद में प्रयुक्त शब्दों का निर्वचन–पद्धति से उल्लेख किया गया है। वर्तमान समय में आचार्य यास्क द्वारा विरचित निरुक्त, इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय और प्रामाणिक ग्रन्थ माना गया है। निघण्टु नामक वैदिक शब्दकोष इसका मुख्य आधार है। इसमें वर्णागम, वर्ण–विपर्यय, वर्ण–विकार, वर्ण–नाश, धातु और उसके अर्थातिशय के साथ योग, आदि विषयों का मुख्यरूप से प्रतिपादन किया गया है—

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदार्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पंचविधं निरुक्तम्।।

इस प्रसंग में ध्यातव्य यह भी है कि निरुक्त और व्याकरण दोनों ही आपस में गहनरूप से जुड़े हुए हैं। व्याकरण का मुख्य प्रयोजन शब्दों की रचना का बोध कराना है। इससे उनके अर्थों का भी बोध हो जाता है, जबकि निरुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति करके, उसके अनेक प्रचलित अर्थों का ज्ञान कराता है। आचार्य यास्क ने अपने पूर्ववर्ती बारह निरुक्तकारों के नामों का उल्लेख किया है। तदनुसार— आग्रायण, औदुम्बरायण, औपमन्यव, और्णवाभ, कात्कथ्य, कौष्टुकि, गार्ग्य, गालव, तैटीकि, वार्ष्यायणि, शाकपूणि, स्थौलाष्ठीवि तथा स्वयं आचार्य यास्क तेरहवें निरुक्तकार हैं।

(ङ) **ज्योतिष**— इसमें यज्ञों के काल–विधान का उल्लेख किया गया है। वैदिक–यज्ञों के मुहूर्त–निर्धारण हेतु, इस वेदांग की आवश्यकता का अनुभव किया गया, क्योंकि किसी भी कार्य का आरम्भ शुभ–नक्षत्र में करने पर ही उसकी निर्विघ्न समाप्ति तथा उससे उत्तम फलों की प्राप्ति होती है। इसके रचयिता 'आचार्य लगध' माने गए हैं।

ज्योतिषशास्त्र की गणना का आधार बारह राशियाँ हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्रादि की गति का निरीक्षण एवं विवेचन करना ही इसका प्रमुख विवेच्य है।

(च) **कल्प**– वेदांगों में 'कल्प' का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'कल्प्यते समर्थ्यते याग प्रयोगोऽत्र इति' इत्यादि परिभाषा के अनुसार इन ग्रन्थों में यज्ञ–विषयक अनुष्ठानों में प्रयोग की जाने वाली विधि के निर्देश प्रदान किए गए हैं। इनकी संख्या चार रही है– श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्वसूत्र।

(छ) **सूत्रग्रन्थ**– इसीप्रकार प्रत्येक वेद के सूत्रग्रन्थों का भी निर्माण किया गया।

(i) **श्रौतसूत्र**– श्रौत, दर्श, पौर्णमास, सोमयाग, वाजपेयादि यज्ञों के अवसरों पर प्रयुक्त होने वाले, सूत्रग्रन्थ ही श्रौतसूत्र कहलाते हैं। सभी संहिताओं के सूत्रग्रन्थों की अलग–अलग रचना की गयी। जैसे–

ऋग्वेदीय– आश्वलायन एवं शांखायन श्रौतसूत्र।

शुक्ल–यजुर्वेदीय– कात्यायन श्रौतसूत्र।

कृष्ण–यजुर्वेदीय–बोधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वैखानस, भारद्वाज, वराह और मानव श्रौतसूत्र।

सामवेदीय– आर्षेय, लाट्यायन, द्राह्यायन, जैमिनीय श्रौतसूत्र। **अथर्ववेदीय**–वैतान श्रौतसूत्र।

(ii) **गृह्यसूत्र**– गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित संस्कारों एवं विधियों का वर्णन, इन गृह्यसूत्र–ग्रन्थों में किया गया है। अलग–अलग संहिताओ के गृह्यसूत्र इसप्रकार हैं–

ऋग्वेदीय–आश्वलायन, शांखायन एवं कौषीतकि गृह्यसूत्र।

शुक्लयजुर्वेदीय– पारस्कर गृह्यसूत्र।

कृष्णयजुर्वेदीय–द्राह्यायन, खादिर, जैमिनीय, गौभिल गृह्यसूत्र।

अथर्ववेदीय– कौशिक गृह्यसूत्र।

(iii) **धर्मसूत्र**– इन ग्रन्थों में आचार–विचार, धर्म, न्याय, नीति–रीति तथा सभी वर्णों के लिए, सामाजिक नियमों का उल्लेख किया गया है। वर्तमान समय में उपलब्ध धर्मसूत्र इसप्रकार हैं–

ऋग्वेदीय– वसिष्ठ एवं विष्णु धर्मसूत्र, कौषीतकीय धर्मसूत्र।

शुक्लयजुर्वेदीय–हारीत एवं शंख धर्मसूत्र।

कृष्णयजुर्वेदीय– बौधायन, हिरण्यकेशी तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्र,

सामवेदीय– गौतम धर्मसूत्र।

(iv) **शुल्वसूत्र**– इन सूत्रग्रन्थों में यज्ञवेदी के निर्माण के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की गयी है। मैक्डॉनल ने इन्हें रेखागणित विषयक सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ बताया है, क्योंकि इनमें ज्यामितीय ज्ञान का उत्कृष्टरूप परिलक्षित होता है। इन्हें भारतीय गणितशास्त्र के प्राचीनतम ग्रन्थ कहा जा सकता है। कात्यायनकृत शुल्वसूत्र (शुक्ल–यजुर्वेदीय) बोधायन, मानव तथा आपस्तम्बकृत शुल्वसूत्र (कृष्णयजु–र्वेदीय) प्रमुखरूप से उपलब्ध हैं।

(ज) वेदांगों का महत्त्व– वेदों के मन्त्रों के ठीक–ठीक उच्चारण के ज्ञान के लिए तथा शुद्ध शब्द एवं उनके अर्थों के ज्ञान हेतु, मन्त्रों के विनियोग के लिए, किसी भी याज्ञिक–क्रिया के मुहूर्तादि की दृष्टि से, उचित ज्ञान हेतु एवं छन्दों के ज्ञान के लिए, इसके लिए सहयोगी साहित्य की आवश्यकता का अनुभव करते हुए, विद्वानों द्वारा छः वेदांगों की रचना की गयी, अतः इस दृष्टि से इनका अत्यधिक महत्त्व है।

- इनमें भी शब्दों का शुद्ध उच्चारण किसप्रकार किया जाए, इसका ज्ञान कराने के लिए, **शिक्षा–ग्रन्थों** का प्रणयन किया गया।

- शब्दों के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ को जानने के लिए तथा वेदों में प्रयुक्त उदात्त आदि के उच्चारण को समझने के लिए प्रातिशाख्य ग्रन्थों तथा **व्याकरण** की संरचना की गयी।

• वेदों में गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती आदि अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। उनकी संरचना तथा ठीक–ठीक लयबद्ध उच्चारण को समझने के लिए **छन्दःशास्त्र** का प्रणयन किया गया।

• इसीप्रकार शब्दों का निर्माण किसप्रकार हुआ, उसका मूल अर्थ क्या है? पारिभाषिक अर्थ क्या है? इस विषय में जानने के लिए एक स्वतन्त्र **निरुक्त–शास्त्र** का निर्माण किया गया। इसी को निर्वचन–शास्त्र भी कहा गया।

• इसके अतिरिक्त यज्ञ का आयोजन कब किया जाए? इसके लिए शुभ–मुहूर्त क्या है? पूर्णिमा, अमावस्या आदि शुभ तिथियाँ कब पड़ रही हैं? जिससे सभी प्रकार के शुभकार्यों का सम्पादन किया जा सके, ये सभी बातें जानने के लिए **ज्योतिष–शास्त्र** की संरचना की गयी।

• इसीप्रकार किसी भी यज्ञ की प्रारम्भ से लेकर अन्त पर्यन्त विधि किसप्रकार होगी? छोटे, बड़े यज्ञों के आयोजन करने पर, उनके लिए क्या–क्या आवश्यक सामग्री होगी? किस यज्ञ में कौन से मन्त्रों का उच्चारण किया जाएगा? उन मन्त्रों के पाठ के लिए कितनी संख्या में ऋत्विजों की आवश्यकता होगी? यज्ञ की वेदी का निर्माण किसप्रकार किया जाएगा? उसका आकारादि के विषय में सूक्ष्मज्ञान के लिए **कल्पग्रन्थों** की संरचना की गयी।

इस विषय में ध्यातव्य यह भी है कि ये सभी वेदांग, सूत्र–शैली में लिपिबद्ध किए गए। वैदिक कर्म–काण्ड, वेदमन्त्रों का विनियोग तथा यज्ञ की विधि आदि के नियम, वस्तुतः अत्यधिक विस्तार लिए हुए थे। इसलिए उन्हें सरलता से स्मरण करने के लिए, यहाँ सूत्र–शैली को ग्रहण किया गया।

आचार्य पाणिनि द्वारा प्रणीत शिक्षा में उपर्युक्त छः अंगों की उपयोगिता तथा कार्य को दृष्टिगत करते हुए, वेद–पुरुष की अत्यन्त सुन्दर कल्पना करके, छः अंगों का वर्णन इसप्रकार किया है। तदनुसार–

इस वेदरूपी पुरुष के छन्द पैर हैं। कल्प इसके हाथ हैं। ज्योतिष नेत्र हैं। निरुक्त कान हैं। शिक्षा नाक है तथा व्याकरण मुख है–

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्माद् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।[1]

इस प्रसंग में विशेषरूप से ध्यातव्य है कि वेदांगों का सबसे पहले उल्लेख हमें 'मुण्डक' नामक उपनिषद् में प्राप्त होता है। जहाँ 'अपरा' नामक विद्या के अन्तर्गत, चारों वेदों के नामों के बाद इसप्रकार किया गया है–

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।[2]

अर्थात् इस उपनिषद् में दो प्रकार की विद्या का कथन किया गया है, **प्रथम,** परा–विद्या तथा **द्वितीय,** अपरा–विद्या। इनमें भी परा–विद्या के माध्यम से व्यक्ति को ब्रह्म की प्राप्ति होती है, जबकि अपरा–विद्या के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष आदि विषयों का समावेश किया गया है।

(झ) शिक्षा वेदांग– जहाँ तक शिक्षा नामक वेदांग का प्रश्न है, विभिन्न ग्रन्थ प्रणेताओं ने इसका मुख्य उद्देश्य वर्णोच्चारण की शिक्षा प्रदान करना प्रतिपादित किया है। वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य सायण ने शिक्षा–ग्रन्थों को परिभाषित करते हुए कहा कि–

'जिन ग्रन्थों में स्वर, वर्ण आदि के शुद्ध उच्चारण की शिक्षा प्रदान की जाए, उसे शिक्षा कहा जाता है।[1]

---

1. पाणिनीय शिक्षा–41–42।
2. मुण्डकोपनिषद्– 1/1/5 ।

इसके अतिरिक्त तैत्तिरीयोपनिषद् के प्रारम्भ में ही शिक्षा के परिमाण के विषय में उल्लेख, इस वेदांग के महत्त्व को प्रतिपादित करता है। वहाँ उपनिषद्कार ने वर्ण, स्वर, बल, मात्रा, साम एवं सन्तान, इन छः अंगों का अध्ययन शिक्षा–ग्रन्थों से होने की बात का उल्लेख किया है–

'शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः, स्वराः, मात्रा, बलं, साम, सन्तान इत्युक्तः शीक्षाध्यायः।।'[2]

इसप्रकार शिक्षा का उद्देश्य वर्णोच्चारण की शिक्षा प्रदान करना, किस वर्ण का उच्चारण स्थान में मुख में क्या है? इसका कथन करना, किस वर्ण के उच्चारण में किंतना बल अर्थात् प्रयत्न करना होगा? इसका उल्लेख करना, किस वर्ण के उच्चारण में शरीर की कितनी वायु (प्राण) का प्रयोग किया जाएगा? उसका किस वर्ण के उच्चारण में परिवर्तन किया जाएगा? इसके अतिरिक्त स्वरों की संख्या कितनी है? और किस स्वर का मुख में किस स्थान से, किसप्रकार उच्चारण किया जाएगा? इत्यादि बातों का कथन किया गया है।

1. पणिनीयशिक्षा– यहाँ तक वेदांगों के महत्त्व तथा शिक्षा–ग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषयों का हमने संक्षेप में उल्लेख किया। अब हम आचार्य पाणिनि द्वारा विरचित शिक्षा–ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय का संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत करेंगे। पाणिनीय–शिक्षा में कुल साठ श्लोकों का प्रयोग किया गया है, जिनमें प्रतिपादित विषय इसप्रकार हैं–

(1) वर्ण– इन्हें स्वर,व्यंजन ध्वनि भी कहा जा सकता है। वेदों में इनकी संख्या बावन है, जबकि हमारी विवेच्य पाणिनीय–शिक्षा में यह संख्या तिरेसठ या चौसठ मानी गयी है।[3]

---

[1] .स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा। ऋग्वेदभाष्य–भूमिका– आचार्य सायण, पृष्ठ–49 ।

[2] . तैत्तिरीय उपनिषद्–1/1 ।

[3] - स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पंचविंशतिः।
यादयश्च स्मृता ह्याष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः।।4।।

पाणिनीय शिक्षा में संस्कृत वर्णों की संख्या तिरेसठ बतायी गयी है तथा यदि इनमें संवृत तथा विवृत अ स्वर को अलग से मान लिया जाए तो यही संख्या चौसठ हो जाती है।[1] जिसे हम इसप्रकार समझ सकते हैं–

चित्र– 1 पाणिनीय शिक्षा में वर्ण(64)
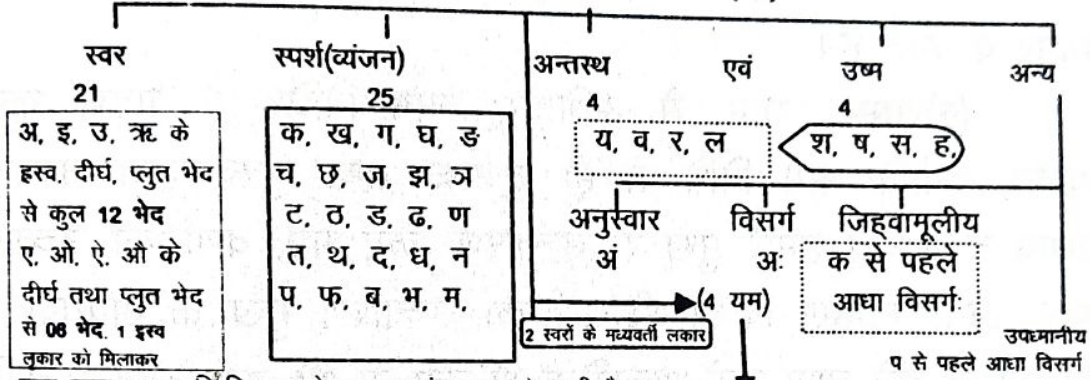
प्लुत लृकार का सम्मिलित करने पर यह संख्या 64 हो जाती है।

वर्गों में पहले चार वर्गों का पाँचवाँ वर्ण पहले रहने पर बीच में पूर्व वर्ण के समान वर्ण 'यम'[2] होता है

(2) स्वर– उदात्त[3], अनुदात्त[4], स्वरित[5] भेद से स्वरों की संख्या कुल मिलाकर तीन बतायी गयी है। मुख में तालु आदि भागों से ऊर्ध्व भाग से उच्चारण किए गए, स्वर ही 'उदात्त' कहलाते हैं तथा मुख में निम्न भाग से उत्पन्न होने वाले स्वर को, यहाँ 'अनुदात्त' कहा गया है, जबकि उदात्त तथा अनुदात्त इन दोनों वर्णों के धर्म से युक्त 'स्वरित' कहलाता है।

(3) मात्रा– स्वरों के उच्चारण में लगने वाले, समय को मात्रा कहा जाता है। ये संख्या में तीन हैं–

1. ह्रस्व मात्रा काल–1
2. दीर्घमात्रा काल– 2
3. प्लुतमात्रा काल–3 ।

अनुस्वारो विसर्गश्च क पौं चापि पराश्रितौ।

दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च।। 5।।

[1]. त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शंभुमते मताः। पाणिनीय शिक्षा– 3।

[2]. पलिक्क्नी, चख्ख्नतुः, अग्ग्निः, घ्घ्नन्ति। ये इनके चार उदाहरण है।

[3]. उच्चैरुदात्तः।

[4]. नीचैरनुदात्तः।

[5]. समाहारः स्वरितः।

(4) बल– वर्णों के उच्चारण में प्रयोग में आने वाले, प्रयत्न तथा उसके उच्चारण–स्थान को 'बल' संज्ञा दी गयी है। प्रयत्न दो प्रकार के होते हैं– आभ्यन्तर प्रयत्न तथा बाह्य प्रयत्न। इसके अतिरिक्त कण्ठ, तालु आदि स्थान के भेद से 'उच्चारण–स्थान' आठ प्रकार के होते हैं।

(5)साम– साम से अभिप्राय 'सम–विधि' से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सम–विधि से ही सुस्पष्ट तथा सुस्वरयुक्त उच्चारण सम्भव है अर्थात् हमारे मुख से उच्चारण किए गए, वर्णों का उच्चारण स्पष्ट होना चाहिए, किसी भी वर्ण का उच्चारण मुख के अवयवों को दबाकर न करें तथा उसे अत्यधिक शीघ्रता से भी नहीं बोलना चाहिए एवं स्वर तथा अर्थ के ज्ञान के साथ, प्रत्येक वर्ण का स्पष्ट उच्चारण किया जाए। यही साम या सम–विधि है।

(6) संज्ञान– इसका अभिप्राय संहिता से ग्रहण करना चाहिए अर्थात् वेद–मन्त्रों में पदपाठ में प्रयुक्त शब्दों में, सन्धि नियमों का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इसके लिए सन्धि के नियमों को जानना तथा उनका उचित स्थान पर प्रयोग करना अत्यावश्यक है।

(7) पाठक के गुण– हमारी विवेच्य पाणिनीय–शिक्षा में ग्रन्थकार ने पाठकों के गुणों का विस्तार से उल्लेख किया है। जिसका हम यहाँ विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं–

i) **माधुर्य–** मधुर ध्वनि से बोलना ही 'माधुर्य' नामक पाठक का गुण है, इसके द्वारा पाठक, श्रोताओं के मन को मोह लेता है।

ii) **अक्षरव्यक्ति–** उच्चारण करते समय वर्णों का स्पष्टरूप से उच्चारण करना आवश्यक है। इससे श्रोता को अभिप्राय समझने में सहायता प्राप्त होती है।

iii) **पदच्छेद–** पदों को अलग–अलग करके, बोलना भी पाठकों के गुणों में ही परिगणित है।

iv) **सुस्वर–** इसका अभिप्राय स्वर के साथ बोलने से ग्रहण करना चाहिए। इससे वाणी में लयबद्धता का संचार होता है।

v) **धैर्य–** उच्चारण करते समय, पाठक को जल्दी–बाजी नहीं करनी चाहिए, अपितु अत्यन्त धैर्य के साथ शान्तिपूर्वक वर्णों का उच्चारण करना चाहिए।

vi) **लयसमर्थ–** इसके अलावा पाठक को सदा ही वर्णों का उच्चारण करने में, 'लय' अथवा 'राग' का ध्यान रखना चाहिए। विशेषरूप से छन्दोबद्ध रचनाओं में इनका प्रयोग किया जाता है।

पाणिनीय शिक्षा में इसी बात को इसप्रकार कहा गया है–

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः।।[1]

(8) पाठक के दोष– पाणिनीय–शिक्षा में ग्रन्थकार ने पाठक के छः गुणों का कथन करने के बाद, उसके छः दोषों का भी उल्लेख किया है। ग्रन्थकार का मानना है, कि–श्रेष्ठ पाठक को इन दोषों को यथाशीघ्र परित्याग कर देना चाहिए। ये दोष इसप्रकार हैं–

गीती शीघ्री शिरः कम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः।।[2]

i) **गीती–** सामान्य मन्त्र को भी गाकर बोलना, दोष के अन्तर्गत परिगणित है। अतः श्रेष्ठ पाठक को इसका परित्याग करना चाहिए।

ii) **शीघ्री–** इसीप्रकार किसी भी पाठ को शीघ्रतापूर्वक भी नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि यह दोष की श्रेणी में आता है।

iii) **शिरःकम्पी–** इसके अलावा हम देखते हैं कि कुछ लोग बोलते समय अर्थात् किसी श्लोक या मन्त्र का पाठ करते समय, अपने सिर का हिलाते हैं, यह श्रेष्ठ पाठक का लक्षण नहीं है। अतः उसे ऐसा नहीं करना चाहिए।

---

[1]. पाणिनीय शिक्षा– 33 ।
[2]. पाणिनीय शिक्षा– 32 ।

iv) **लिखित पाठक**– इसके अतिरिक्त पाणिनीय–शिक्षा के अनुसार जो लोग मौखिक के स्थान पर लिखे हुए को पढ़ते हैं, उसे भी दोष की श्रेणी में रखा गया है। अतः जिस मन्त्र या श्लोकादि का उच्चारण करना हो, तो उसे पहले कण्ठस्थ कर लेना चाहिए।

v) **अनर्थज्ञ**– इसीप्रकार किसी भी मन्त्र अथवा श्लोक, जिसका उच्चारण किया जा रहा है, उसके अर्थ को भी पहले भलीप्रकार जान लेना चाहिए, क्योंकि बिना अर्थ जाने उच्चारण करने से वह अपना प्रभाव नहीं दिखाता है।

vi) **अल्पकण्ठ**– इसके अलावा अधूरे रूप में याद किए गए, मन्त्रादि का उच्चारण भी पाठक को नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से उसे लाभ के स्थान पर, हानि की सम्भावना अधिक रहती है।

(ञ) प्रमुख शिक्षाग्रन्थ– यद्यपि आचार्य पाणिनि द्वारा विरचित शिक्षाग्रन्थ अत्यधिक लोकप्रिय हुआ, किन्तु इसके अतिरिक्त भी कुछ शिक्षाग्रन्थों का अलग–अलग विद्वानों द्वारा प्रणयन किया गया। जिनकी संख्या 35 के लगभग है। इन सभी शिक्षा–ग्रन्थों में विशेषरूप से मन्त्रों के उच्चारण आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

इनमें से बत्तीस शिक्षा ग्रन्थों का संग्रह पं. युगल किशोर पाठक ने 1893 ई. में सम्पादित करके, बनारस संस्कृत सीरीज, काशी से प्रकाशित कराया है।

इन शिक्षा–ग्रन्थों में ध्वनि–विज्ञान से जुड़े हुए, अनेकानेक महत्त्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन किया गया है। जिनके अन्तर्गत स्वर, व्यंजनों के भेद, स्वरों के उच्चारण विषयक अनेक भेद तथा वर्णों के उच्चारण–प्रयत्न आदि का विवेचन, अनुस्वार तथा अनुनासिक का अन्तर, विसर्ग के विभिन्न रूप, वर्णोच्चारण की वैज्ञानिक प्रक्रिया, उदात्त, अनुदात्त आदि का संगीत के सरगम के स्वरों के साथ सम्बन्ध, ह्रस्व 'ए' तथा 'ओ' का अस्तित्व, 'ओ, औ' के संवृत, विवृतरूप, वर्णोच्चारण की विधि एवं सन्धियों का विवेचन किया गया है।

इन शिक्षा ग्रन्थों में कुछ प्रमुख शिक्षा ग्रन्थों का हम यहाँ परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं–

(1) पाणिनीय–शिक्षा– यह अत्यधिक लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध शिक्षाग्रन्थ है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता वैदिक तथा लौकिक संस्कृत दोनों के लिए उपयोगी होना रही है। इसमें कुल साठ श्लोकों को निबद्ध किया गया है। जिनमें वर्णों की संख्या, उच्चारण प्रक्रिया का ध्वनि–शास्त्रीय विवेचन, वर्णों के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न का विवरण, संवृत, विवृत, घोष, अघोष, स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट आदि भेदों का विस्तार एवं अन्त में पाठक के गुण–दोषों का वर्णन किया गया है।

(2) भरद्वाज–शिक्षा– इस शिक्षा–ग्रन्थ में पदों की शुद्धता एवं ध्वनि–भेद से उदात्त आदि स्वरों में भेद का विवेचन किया गया है।

(3) याज्ञवल्क्य–शिक्षा– आचार्य याज्ञवल्क्य द्वारा विरचित इस शिक्षा–ग्रन्थ में कुल दो सौ बत्तीस श्लोकों में वैदिक स्वरों का विवेचन, वर्णों के भेद, उनका स्वरूप, परस्पर साम्य एवं वैषम्य तथा लोप, आगम, विकार, प्रकृतिभाव आदि का विवरण विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। इसप्रकार आकार की दृष्टि से यह विशाल शिक्षा–ग्रन्थ कहा जा सकता है।

(4) प्रातिशाख्य प्रदीप–शिक्षा–इस शिक्षा–ग्रन्थ में स्वर, वर्ण आदि की शिक्षा का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। प्राचीन वैयाकरणों के मतों का उल्लेख, इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है।

(5) नारदीय शिक्षा–इसमें सामवेद के स्वरों का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

इनके अलावा भी कुछ छोटे–छोटे शिक्षा–ग्रन्थ मिलते हैं, जिनका यहाँ केवल नामोल्लेख किया जा रहा है।

1. व्यास–शिक्षा 2. वासिष्ठी–शिक्षा 3. कात्यायनी–शिक्षा
4 पाराशरी–शिक्षा 5. माण्डव्य–शिक्षा 6. माध्यदिनी–शिक्षा
7 वर्णरत्न–प्रदीपिका 8. केशवी–शिक्षा 9. स्वरांकन–शिक्षा

10. स्वरभक्ति लक्षण–शिक्षा आदि।

इस प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि उपर्युक्त शिक्षा–ग्रन्थों के अतिरिक्त भी कुछ शिक्षा–सूत्र प्राप्त होते हैं। इनमें आपिशलि, पाणिनि एवं चन्द्रगोमी के शिक्षा–सूत्रों का प्रकाशन भी शिक्षासूत्राणि ग्रन्थ काशी से संवत् 2005 में हुआ है।[1]

(ट) आचार्य पणिनि– पाणिनीय–शिक्षा की बात की जाए तथा पाणिनि के विषय में न जाना जाए, तो बात कुछ अधूरी सी प्रतीत होती है। इसलिए हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में आचार्य पाणिनि का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं–

संस्कृत व्याकरण के इतिहास में आचार्य पाणिनि का नाम देदीप्यमान सूर्य के समान आज भी दीपित हो रहा है तथा हमेशा दीपित होता रहेगा। पाणिनि का व्याकरण सर्वांगरूप से इतना अधिक पूर्ण है कि उनके समक्ष उनसे भी प्राचीन सभी व्याकरण ग्रन्थ लुप्तप्राय हो गए हैं। यह भी शाश्वत् सत्य है कि उनके पश्चात् भी पाणिनीय ग्रन्थों के व्याख्याकार तथा भाष्यकार आदि ही विशेष ख्याति प्राप्त कर सके। इतना ही नहीं, वार्तिककार कात्यायन तथा महाभाष्यकार पतंजलि ने तो आचार्य पाणिनि के नाम को अमर ही कर दिया है।

(i) पाणिनि का जीवनचरित– आचार्य पाणिनि के जीवन के विषय में प्रामाणिक सामग्री का लगभग अभाव ही है। पुनरपि सोमदेव के कथासरित्सागर, राजशेखर की काव्यमीमांसा, पतंजलि के महाभाष्य तथा मंजुश्री मूल–कल्प आदि में इनके विषय में कुछ स्फुट विवरणों के आधार पर, इनके जीवन–चरित का उल्लेख हम आगे करेंगे। इससे पूर्व ध्यातव्य है कि–पुरुषोत्तम देव ने अपने त्रिकाण्डकोष नामक ग्रन्थ में पाणिनि के पाँच नामों का कथन किया है–

---

[1]. वैदिक साहित्य और संस्कृति, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ–190–193 ।

पाणिन का पुत्र पाणिनि, दाक्षीपुत्र, शालंकि, शालातुरीय तथा आहिक। इसके अतिरिक्त पाणिनि पद की व्युत्पत्ति आचार्य कैयट ने इसप्रकार दी है– पणिन् का पुत्र पाणिन तथा पाणिन का पुत्र पाणिनि–

पणिनोऽपत्यमित्यण् पाणिनः। पाणिनस्यापत्यं युवेति इञ् पणिनिः।[1]

इस व्युत्पत्ति के आधार पर कहा जा सकता है कि पाणिनि के पिता का नाम 'पाणिन' था। व्याकरण के प्रसिद्ध विद्वान् पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने भी इससे सहमति व्यक्त की है। इसके अलावा महाभाष्यकार पतंजलि ने इन्हें 'दाक्षीपुत्र' संज्ञा प्रदान की है।[2] हमारे विवेच्य प्रस्तुत ग्रन्थ पाणिनीय–शिक्षा में भी इन्हें दाक्षी–पुत्र ही कहा है।[3] इसके आधार पर कहा जा सकता है कि इनकी माता का नाम 'दाक्षी' था। दक्षकुल की होने से इनकी माता का नाम 'दाक्षी' हुआ।[4]

इसीप्रकार संग्रहकार 'व्याडि' के नाम 'दाक्षि' तथा 'दाक्षायण' हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि 'व्याडि' पाणिनि के मामा थे।

इसके अतिरिक्त षड्गुरुशिष्य ने अपनी 'वेदार्थदीपिका' में छन्दः शास्त्र के रचनाकार आचार्य पिंगल को पाणिनि का छोटा भाई बताया है।[5] कथासरित्सागर में पाणिनि के गुरु के 'वर्ष' नाम का उल्लेख किया गया है तथा यहीं पर आचार्य कात्यायन, व्याडि तथा इन्द्रदत्त को पाणिनि का सहपाठी भी बताया है, किन्तु परम्परा महेश्वर(भगवान् शिव)

---

[1]. प्रदीप टीका, आचार्य कैयट। 1/1/73 ।

[2]. सर्वे सर्वपदादेशाः दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः। महाभाष्य– 1/1/20।

[3]. शंकरः शांकरीं प्रादाद्दाक्षीपुत्राय धीमते।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः।। 56।।

[4]. संस्कृत व्याकरण–डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1967, पृष्ठ–24–26।

[5]. भगवता पिंगलेन पाणिन्यनुजेन .....। वेदार्थदीपिका–पृष्ठ–70 ।

को पाणिनि का गुरु स्वीकार करती है। मान्यता है कि पाणिनि ने शिव की घोर आराधना की, तो भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर अपने डमरू को चौदह बार बजाया, जिस ध्वनि को पाणिनि ने चौदह प्रत्याहार सूत्रों के रूप में बाद में लिपिबद्ध किया। यदि इन सूत्रों को ध्यानपूर्वक उच्चारण किया जाए, तो इनसे डमरू जैसी ध्वनि की प्रतीति भी होती है।

इसके अतिरिक्त महर्षि पतंजलि ने पाणिनि की प्रशंसा करते हुए कहा कि– पाणिनि के सूत्रों में एक वर्ण भी निरर्थक नहीं है।[1] इसीप्रकार काशिका में जयादित्य ने पाणिनि की सूक्ष्मदृष्टि की भूरि–भूरि प्रशंसा की है।[2] राजशेखर के अनुसार– पाटलिपुत्र में आयोजित विद्वानों की शास्त्र–परीक्षा में पाणिनि भी उपस्थित थे। उसी के बाद उन्हें प्रसिद्धि प्राप्त हुई।[3] महाभाष्यकार पतंजलि ने पाणिनि के शिष्य के रूप में कौत्स का उल्लेख किया है।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि ये कौत्स कालिदास के रघुवंश[5] के वरतन्तु ऋषि के शिष्य 'कौत्स' से भिन्न है।

पाणिनि वस्तुतः सम्पन्न परिवार से सम्बन्ध रखते हैं। महाभाष्य के अनुसार– वे अपने निवास स्थान पर अध्ययन करने वाले, छात्रों के भोजन आदि का प्रबन्ध भी करते थे। यहाँ तक कि कुछ छात्र तो यहाँ केवल भोजन करने के लोभ से ही पढ़ने के लिए आते थे, ऐसे छात्रों को उन्होंने 'ओदनपाणिनीयाः' संज्ञा प्रदान की है,[6] जो वस्तुतः निन्दापरक शब्द है।

---

1. प्रमाणभूत आचार्यो.... महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म।
   तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुम्।। महाभाष्य– 1/1/1।
2. महती सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य। काशिका– 4/2/74 ।
3. काव्यमीमांसा, अध्याय–10 ।
4. महाभाष्य– 3/2/108।
5. रघुवंश– 5/1 ।
6. महाभाष्य– 1/1/73 ।

पंचतन्त्र में प्रयुक्त एक श्लोक के आधार पर पाणिनि की मृत्यु के विषय में मान्यता है कि उनका वध एक शेर के द्वारा किया गया था– **सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत् प्रणान् प्रियान् पाणिनेः।**[1]

(ii) आचार्य पाणिनि की रचनाएँ– पाणिनि की सर्वोत्कृष्ट रचनाओं में **अष्टाध्यायी** का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसे लौकिक संस्कृत का प्रथम सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि इसमें कुछ सूत्रों में वैदिक व्याकरण के सूत्रों का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु प्रमुखता लौकिक संस्कृत सूत्रों की ही रही है। सूत्र–पद्धति से लिखे गए, इस ग्रन्थ के कारण विद्वानों ने पाणिनि को सूत्रकार भी कहा है।

(क) अष्टाध्यायी –वस्तुस्थिति यह है कि अष्टाध्यायी के सूत्रों में एक वर्ण या एक मात्रा का भी परिवर्तन करना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि लगभग ढाई हजार वर्षों के बाद भी अष्टाध्यायी का कोई पाठभेद उपलब्ध नहीं है। आठ अध्यायों में निबद्ध इस विशालकाय ग्रन्थ में कुल सूत्र संख्या 3995 मानी गयी है।

पाणिनि की दूसरी रचनाओं में धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र तथा लिंगानुशासन की भी गणना की गयी है, ये सभी ग्रन्थ वस्तुतः अष्टाध्यायी के पूरक–ग्रन्थ के रूप में भी स्वीकार किए जा सकते हैं।

(ख) धातुपाठ– जैसे– धातुपाठ में प्रयुक्त धातुओं के साथ अनुबन्धों के अनुसार ही अष्टाध्यायी के सूत्रों का निर्माण किया गया है। धातुपाठ की विशेषता है कि यहाँ ग्रन्थकार ने धातुओं के साथ उनके अर्थ का भी उल्लेख किया है तथा धातुओं के अन्त में या प्रारम्भ में जो अनुबन्ध लगाए गए हैं, वे सभी सार्थक हैं। जैसे– डुकृञ् करणे धातु में डु इत् होने से ड्वितः क्त्रिः[2] से त्रि प्रत्यय का प्रयोग होकर 'कृत्रिम' शब्द बनता है तथा ञ् के हटने से ञित् होकर यह धातु उभयपदी होती है।

(ग) गणपाठ– इसमें ऐसे शब्दों का संग्रह करके, उनके गण बनाए गए हैं, जिन शब्दों में एक समान कार्य होता है अर्थात् प्रत्ययादि

---

1 . मित्रसम्प्राप्ति पंचतन्त्र, श्लोक संख्या– 36।

2 . अष्टाध्यायी– 3/3/88 ।

का प्रयोग किया जाता है। व्याकरण को संक्षिप्त करने में 'गणपाठ' की महती भूमिका रही है, क्योंकि यहाँ एक गण में अनेक धातुओं का उल्लेख करके, उसके पहले पद का कथन करने के बाद, 'आदि' पद के प्रयोग से, उस गण में पठित सभी धातुओं से अभिप्राय ग्रहण कर लिया जाता है।

जैसे– चादयोऽसत्त्वे[1] सूत्र से 'च' आदि की निपात संज्ञा होती है, जो वस्तुतः अव्यय हैं। आचार्य पाणिनि ने चादिगण में 140 शब्दों का उल्लेख किया है। इसीप्रकार अनेक गणों में सौ से भी अधिक पदों का प्रयोग किया गया है। इसलिए इस प्रक्रिया से पाणिनि को अपने सूत्रों को संक्षेप करने में अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई है। वस्तुतः पाणिनि के सभी ग्रन्थ भाषा–वैज्ञानिक शैली के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं।

(घ) उणादिसूत्र– यह वस्तुतः कृदन्त प्रकरण का एक अंश है। इनमें धातु से कुछ प्रत्ययों का प्रयोग करके, संज्ञा एवं विशेषण आदि अनेक प्रकार के पदों का निर्माण किया गया है। इसके प्रथम सूत्र के आधार पर, इसका नाम उणादिसूत्र[2] पड़ा है। इसमें कुल पाँच अध्यायों में 759 सूत्रों का प्रयोग किया गया है। उणादि सूत्रों से बने शब्द वस्तुतः कृदन्त होते हैं। ध्यातव्य है कि इस ग्रन्थ में अर्थ अथवा सादृश्य के आधार पर किसी भी धातु के प्रयोग तथा आवश्यकता के अनुसार प्रत्ययों के प्रयोग की स्वतन्त्रता है। यहाँ तक कि गुण, वृद्धि करने के लिए भी धातु में उसीप्रकार के अनुबन्ध का भी प्रयोग कर लिया जाता है।

यही कारण है कि इन सूत्रों का आश्रय लेकर ही कुछ वैयाकरण मियाँ, मौलाना जैसे शब्दों को भी धातुज मानकर 'मीञ् हिंसायाम्' धातु से डियाँ तथा डौलाना प्रत्यय करके, इन शब्दों की भी सिद्धि सरलतापूर्वक कर लेते हैं।

---

1. अष्टाध्यायी– 1/4/50 ।
2. कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्।

(ङ) लिंगानुशासन– इस ग्रन्थ में शब्दों के लिंग के सम्बन्ध में विस्तार से उल्लेख किया गया है। यहाँ 188 सूत्रों का कथन हुआ है। जिन्हें छः भागों में विभाजित किया गया है, जो इसप्रकार हैं–

1. स्त्रीलिंग शब्द
2. पुल्लिंग शब्द
3. नपुंसकलिंग शब्द
4. स्त्रीलिंग–पुल्लिंगशब्द
5. पुल्लिंग–नपुंसकलिंग शब्द
6. विविध ।

- उदाहरण के लिए क्तिन् प्रत्ययान्त पद स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे– गतिः, मतिः, रतिः आदि।
- जबकि घञ् तथा अप् प्रत्ययान्त पद पुल्लिंग होते हैं। जैसे– प्रकारः, प्रहारः, आधारः, करः, यवः आदि।
- इसीप्रकार ल्युट् प्रत्ययान्त पद नपुंसकलिंग होते हैं। जैसे– करणम्, गमनम्, हसनम् आदि।

वस्तुतः धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र तथा लिंगानुशासन, ये चारों ही अष्टाध्यायी के चार परिशिष्ट रूप में हैं तथा इन सभी के प्रणेता आचार्य पाणिनि को ही माना गया है।

इसके अतिरिक्त आचार्य पणिनि की कृतियों में **पाणिनीय–शिक्षा** का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसका विवेचन हम पूर्व में कर चुके हैं। इसके दो संस्करण मिलते हैं। **प्रथम,** लघु तथा **द्वितीय,** बृहत्। लघु पाठ 'याजुष–पाठ' कहलाता है, क्योंकि इसमें कुल 35 श्लोकों को निबद्ध किया गया है, जबकि बृहत्–पाठ 'आर्च' कहलाता है। इसमें साठ श्लोकों का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन में हमने 'आर्च' पाठ को ग्रहण किया है, क्योंकि यही संस्करण अधिक प्रचलित रहा है। जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि इसमें वर्णों के उच्चारण की विस्तार से शिक्षा प्रदान की गयी है।

(च) द्विरूप कोष– पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने छः पृष्ठों में पूर्ण होने वाले कोष का उल्लेख किया है। उनके अनुसार– लन्दन की इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में यह हस्तलिखित रूप में प्राप्त हुई है। इसके अन्त में इसप्रकार लिखा हुआ है कि–

इति पाणिनिमुनिना कृतं द्विरूपकोशं सम्पूर्णम्।[1]

(छ) जाम्बवतीविजय अथवा पातालविजय– यह एक महाकाव्य है। इसमें श्रीकृष्ण का पाताल में जाकर जाम्बवती के विजय तथा परिणय की कथा को ग्रहण किया गया है। यद्यपि डॉ. पिशेल ने इसे पाणिनि की रचना माना है, किन्तु डॉ. पिटर्सन तथा डॉ. भाण्डारकर उनके मत से सहमत नहीं हैं।

वस्तुतः पाणिनि के महाकाव्यकार होने में संदेह करना, समीचीन प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि लगभग छब्बीस ग्रन्थों में इसके उद्धरण पाणिनि के नाम से ही प्राप्त होते हैं। विस्तारभय से हम उनका यहाँ उल्लेख नहीं कर रहे हैं, किन्तु इस विषय में दसवीं शती में स्थित कविराज राजशेखर के कथन को उद्धृत करना, यहाँ समीचीन प्रतीत होता है–

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह।
आदौ व्याकरणं काव्यमनुजाम्बवतीजयम्।।

इसीप्रकार भामह के काव्यालंकार की एक टीका में समासोक्ति के उदाहरणरूप में पाणिनि द्वारा विरचित एक श्लोक को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है–

उपोरागेण विलोलतारकं,
तथा गृहीतं शशिना निशामुखम्।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तथा,
परोऽपि रागाद् गलितं न लक्षितम्।।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य पाणिनि न केवल वैयाकरण थे, अपितु महाकाव्यकार भी थे। अष्टाध्यायी आदि व्याकरण ग्रन्थों की रचना करने के बाद, उन्होंने जाम्बवतीजय नामक महाकाव्य का प्रणयन किया, इसमें लेशमात्र में संदेह का स्थान नहीं है।

•••

---

1 . संस्कृत व्याकरण का इतिहास, पं. युधिष्ठिर मीमांसक, पृष्ठ –229 ।

।। श्रीः ।।

पाणिनीय–शिक्षा

अवतरणिका– ग्रन्थ का आरम्भ करते हुए ग्रन्थकार आचार्य पाणिनि कहते हैं कि–

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा।
शास्त्रानुपूर्व्यं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः।।1।।

अन्वय–अथ पाणिनीयम् मतम् यथा शिक्षाम् प्रवक्ष्यामि। तत् लोकवेदयोः यथोक्तम् शास्त्रानुपूर्व्यम् विद्यात्।।1।।

अनुवाद–इसके बाद मैं आचार्य पाणिनि द्वारा विरचित 'शिक्षा' को कहूँगा। विद्वानों को इसे, लोक एवं वेद दोनों के तथा शास्त्र के अनुरूप समझना चाहिए।।1।।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत शिक्षा–ग्रन्थ की महत्ता बताते हुए, ग्रन्थकार कहते हैं कि– अब मैं जिस ग्रन्थ की संरचना व्याकरण के धुरन्धर विद्वान् आचार्य पाणिनि द्वारा की गयी, उसकी व्याख्या करने जा रहा हूँ। आकार में छोटा होते हुए भी यह ग्रन्थ वस्तुतः लौकिक संस्कृत तथा वैदिक संस्कृत दोनों के अनुरूप है, क्योंकि यहाँ प्रतिपादित विषय के आधार पर अनेक विद्वानों ने इसकी मुक्त–कण्ठ से सराहना की है।

इसके अतिरिक्त यह ग्रन्थ प्राचीन व्याकरण शास्त्र के अनुरूप भी है। दूसरे शब्दों में, इस ग्रन्थ में कहीं भी शास्त्र के विरूद्ध बात का उल्लेख नहीं किया है। इन तीन कारणों से यह व्याकरण के प्रति जिज्ञासु छात्रों के लिए अत्यधिक उपयोगी है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक की भाषा अत्यन्त सरल, भावबोधगम्य तथा प्रवाहपूर्ण प्रयुक्त हुई है। सम्मूर्ण ग्रन्थ में इसीप्रकार की सरल भाषा को अपनाया गया है।

(ii) 'अथ' पद का प्रयोग यहाँ 'आनन्तर्य' तथा 'मंगल' का सूचक है। इस सम्बन्ध में निम्न श्लोकं प्रमाणरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्मांगलिकावुभौ।।

अर्थात् 'ओंकार' तथा 'अथ' ये दोनों शब्द प्राचीन समय में ब्रह्मा के कण्ठ का भेदन करके निकले थे, इसलिए ये दोनों ही शब्द वस्तुतः मंगलसूचक माने गए हैं।

(iii) इसी विषय में अमरकोशकार का भी कथन उल्लेखनीय है–

'मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्र्येष्वथो अथ।'

(iv) ग्रन्थ के आरम्भ तथा अन्त में प्रयुक्त श्लोकों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि– महर्षि पाणिनि ने इस ग्रन्थ का प्रणयन या उपदेश अवश्य किया था, किन्तु इसको लिपिबद्ध उन्हीं के प्रशंसक किसी अन्य विद्वान् द्वारा किंया गया है। तभी प्रस्तुत श्लोक में 'पाणिनीयं मतं शिक्षां प्रवक्ष्यामि' इत्यादि वाक्य का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया है।

(v) इस श्लोक के समान ही सम्पूर्ण ग्रन्थ में प्रायः 'अनुष्टुप्' छन्द का प्रयोग हुआ है, जिसका लक्षण इसप्रकार है–

श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघुपंचमम्।
द्विःचतुर्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

(vi) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–2)

पाणिनीयशिक्षा

लौकिक, वैदिक संस्कृत दोनों के लिए उपयोगी ⟶ प्राचीन शास्त्र के अनुकूल है
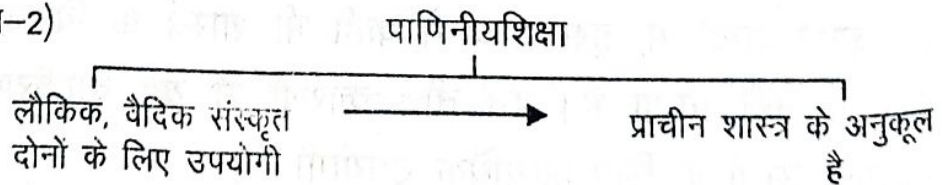
टिप्पणी– (i) प्रवक्ष्यामि– प्र + √ब्रू+ लृट् लकार, उत्तम पुरुष, एक वचन, कहूँगा।

(ii) विद्यात्– √विद् (ज्ञाने) + विधिलिंग, प्रथम पुरुष, एक वचन, जानना चाहिए।

(iii) पाणिनीयम्–पाणिनि+अनीयर्, पाणिनि से सम्बन्धित।

संस्कृत–व्याख्या–तदनन्तरम् अहम् एनम् आचार्यपाणिना कथितम् शिक्षा नाम वेदांगम् ग्रन्थम् कथयिष्यामि। एषः शिक्षा नामक ग्रन्थः वस्तुतः शास्त्रानुकूलो वर्तते तथा लौकिकवैदिकसंस्कृताय उभयोः कृते अपि उपयोगी अस्ति। एतत् तथ्यम् सम्यक्रूपेण अस्य अध्येता द्वारा ज्ञातव्यम्। अनेन अस्य ग्रन्थस्य उपयोगिता प्रदर्शिता। अथ शब्दोऽत्र आनन्तर्यार्थे मंगलवाची च विद्यते। अनुष्टुप् छन्दोऽत्रास्ति।

अवतरणिका– मंगलाचरण तथा ग्रन्थ की उपयोगिता का कथन प्रथम श्लोक में करने के बाद ग्रन्थकार, ग्रन्थ के महत्त्व के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः।
पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम्।।2।।

अन्वय– शब्दार्थम् प्रसिद्धम् अपि अबुद्धिभिः अविज्ञातम्। (अतः) उच्चारणे वाचः विधिम् पुनः व्यक्तीकरिष्यामि।। 2।।

अनुवाद– शब्दों के उच्चारण की विधि प्रसिद्ध होने पर भी मन्दबुद्धि लोगों द्वारा अज्ञात ही है। इसलिए मैं उच्चारण के विषय में वाणी के नियमों को फिर से कहूँगा।। 2।।

'चन्द्रिका'–ग्रन्थकार का अभिप्राय है कि– यद्यपि इससे पूर्व भी अनेक शिक्षा–ग्रन्थों में शब्दों के उच्चारण की विधि का कथन किया जा चुका है, किन्तु फिर भी जो इस विषय में मन्दबुद्धि लोग हैं, उनके लिए वे ग्रन्थ समझ में न आने के कारण, उपयोगी नहीं हैं, इसलिए वहाँ प्रतिपादित शब्दों के उच्चारण के सिद्धान्त किंचित् क्लिष्ट प्रतीत होते हैं।

इसी अभिप्राय को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत पाणिनीय शिक्षा का प्रणयन मन्दबुद्धि जिज्ञासुओं के लिए किया जा रहा है। मेरा मानना है कि इस सम्बन्ध में अवश्य ही मन्दबुद्धि लोगों को भी लाभ की प्राप्ति

होगी और वे शब्दों के उच्चारण के विषय में किसीप्रकार की कोई त्रुटि नहीं करेंगे।

विशेष–(i) उपर्युक्त श्लोक में ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के प्रयोजन का प्रतिपादन अत्यन्त सुन्दर तथा सरल शैली में किया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक के आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि–प्रस्तुत पाणिनीय शिक्षा से पहले अनेक शिक्षा–ग्रन्थ प्रचलन में थे, किन्तु उनकी कठिन शैली तथा विषय के अत्यधिक विस्तार के कारण वे लोकप्रिय नहीं हो सके। इसीलिए किंचित् मन्दबुद्धि तथा सरल लोगों को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत शिक्षा–ग्रन्थ का प्रणयन किया गया।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–3)

ग्रन्थ का प्रयोजन

शब्दोच्चारण विधि ⟶ विद्वत्वर्ग में प्रसिद्ध है ⟶ तथापि

मन्दबुद्धियों के लिए वर्णोच्चारण विधि का पुनः कथन किया जा रहा है।
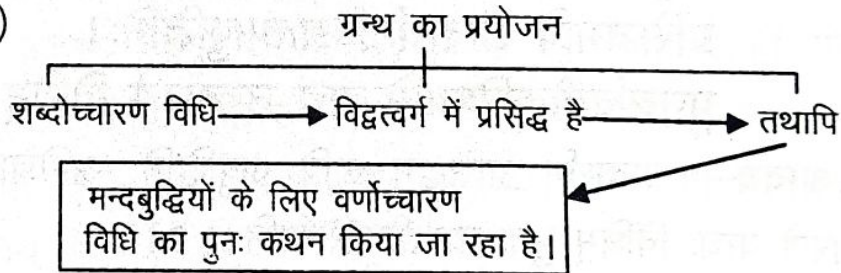
टिप्पणी– (i) अविज्ञातम्– न विज्ञातम्, इति, नञ् समास ।

(ii) व्यक्तीकरिष्यामि–व्यक्त + च्वि + √कृ+ लृट्लकार + उत्तम पुरुष, एक वचन, व्यक्त करूँगा।

संस्कृत–व्याख्या–ग्रन्थकारः कथयति यत्– यद्यपि पूर्वकाले विद्वद्भिः शब्दोच्चारणविधिः सम्यक्रूपेण व्याख्याता वर्तते, किन्तु ये जनाः जिज्ञासवः सन्ति, विषयेऽस्मिन् तेषाम् मन्दबुद्धीनाम् कृते वर्णानाम् उच्चारणनियमान् पुनः कथयिष्यामि सरलरूपेण, इत्यर्थः।। 2।।

अवतरणिका– ग्रन्थ का प्रयोजन एवं इसकी उपयोगिता का उल्लेख करने के बाद ग्रन्थकार देववाणी में कुल वर्णों की संख्या तथा इनके प्राचीन उपदेश के विषय में कथन करते हुए कहते हैं कि–

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा।।3।।
स्वरा दिंशतिरेकश्च स्पर्शानां पंचविंशतिः।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः।।4।।

अन्वय– अपि च प्राकृते संस्कृते शम्भुमते त्रिषष्टिः चतुःषष्टिः वा वर्णाः मताः। (यतोहि ते) स्वयम्‌ ·स्वयम्भुवा प्रोक्ताः।। 3।।

हि एकविंशतिः स्वराः, स्पर्शनाम्‌ पंचविंशतिः, य–आदयः च अष्टौ स्मृताः, चत्वारः च यमाः स्मृताः।। 4।।

अनुवाद–इसके अतिरिक्त प्रकृति के अनुकूल संस्कृत में, भगवान्‌ शिव के मत में, तिरेसठ अथवा चौसठ वर्ण कहे गए हैं, क्योंकि वे तो स्वयं भगवान्‌ विधाता द्वारा ही कहे गए हैं।। 3।।

वस्तुतः इक्कीस स्वर, स्पर्श नामक वर्ण पच्चीस, य–आदि आठ कहे गए हैं तथा चार 'यम' माने गए हैं।। 4।।

'चन्द्रिका'–सामान्य जनों की बोलचाल की भाषा संस्कृत में, भगवान्‌ शिव ने स्वयं तिरेसठ अथवा चौसठ वर्णों का उल्लेख किया है, इस विषय में लेशमात्र भी संदेह की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि स्वयं विधाता अर्थात्‌ ब्रह्मा ने इस विषय में पूर्वकाल में कथन किया है।

इसके बाद उन तिरेसठ या चौसठ वर्णों की संख्या को स्पष्ट करते हुए ग्रन्थकार ने अग्रिम श्लोक का प्रणयन किया है। तदनुसार–

इस तिरेसठ अथवा चौसठ की इस संख्या को इसप्रकार समझना चाहिए–

(क) **स्वर वर्णों की संख्या इक्कीस** इसप्रकार होती है– अ, इ, उ, ऋ, ये चारों वर्ण क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत भेद से बारह हो जाते हैं। (4×3=12)। तत्पश्चात्‌ ए, ओ, ऐ, औ, ये चार स्वर दीर्घ एवं प्लुत के भेद से आठ हो जाते हैं। (4×2=08) तथा इनमें भी एक ह्रस्व लृकार को मिलाकर, स्वर वर्णों की यह संख्या कुल मिलाकर **इक्कीस** हो जाती है, जिसे हम निम्न चित्र से सरलतापूर्वक समझ सकते हैं। द्रष्टव्य–चित्र, संख्या–1, पृष्ठ–41।

(ख) तत्पश्चात् स्पर्श वर्णों की संख्या यहाँ कुल मिलाकर पच्चीस बतायी गयी है, जिसे हम इसप्रकार समझ सकते हैं, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग इन पाँचों वर्गों के क्रमशः पाँच, पाँच वर्णों को (5×5=25) करने पर ये कुल पच्चीस हो जाते हैं, इन्हें व्यंजन वर्ण भी कहा गया है। इसे भी चित्र–1, पृष्ठ–41 पर हम भलीप्रकार समझ सकते हैं।

विशेष–(i) श्लोक में प्रयुक्त प्रकृति से अभिप्राय संस्कृत से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वेद में वर्णों की संख्या भिन्न रही है, जिसका आगे कथन किया जाएगा।

(ii) तिरेसठ अथवा चौसठ संख्या तात्कालिक समय में इस सम्बन्ध में विद्वानों के मध्य मतभेद को प्रदर्शित करता है, क्योंकि कुछ विद्वान् इस विषय में चौसठ, संख्या से सहमत थे, तो अन्य कुछ इसकी संख्या तिरेसठ मानने के पक्षधर थे, ग्रन्थकार ने यहाँ उन दोनों ही मतों का उल्लेख किया है।

(iii) इसके अतिरिक्त इसे इसप्रकार भी समझ सकते हैं, कि लौकिक संस्कृत में यह संख्या 63 है, जबकि वैदिक संस्कृत में यह 64 हो जाती है, जिसे आगे स्पष्ट करेंगे।

(iv) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रदर्शित कर सकते हैं–(द्रष्टव्य .–भूमिका में चित्र संख्या–1, पृष्ठ–41)

टिप्पणी– (i) स्मृताः– √स्मृ+क्त, प्र.वि, बहुवचन, कहे गए हैं।

संस्कृत–व्याख्या–प्रकृत्यनुकूले संस्कृते देवाण्याम् वा त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा संख्या वर्णानाम् कथिता अस्ति। संख्या एषा शम्भुमते शिवमते वा इष्टाः विद्यते। विधात्रा साक्षात् स्वयंभुवा ब्रह्मणा अपि एषा वै संख्या कथिता अस्ति।।4।।

पुनः संख्यायाम् वर्णानाम् कथयति ग्रन्थकारः– एषु वर्णेषु एक–विंशतिः संख्या स्वरवर्णाः सन्ति, स्पर्शवर्णानाम् व्यंजनवर्णानाम् वा संख्या एषा पंचविंशतिः विद्यते। एवमेव य–आदिर्येषाम् ते यादयः वर्णाः

यवरलशषसहाः, इति सन्ति, तेषाम् संख्याष्टास्ति। नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि वर्तते।

अन्यच्च चतुःसंख्यकाः यमाः विद्यन्ते, वर्गेषु आद्यानाम् चतुर्णाम् पंचमे परे पूर्वसदृशाः वर्णाः अर्थात् कादि पंचवर्गेषु एकैकस्य वर्गस्य आद्यानाम् चतुर्णाम् मध्ये एकैस्मात् पंचमे परे मध्ये पूर्ववर्णसदृशः वर्णः यमः, इति प्रातिशाख्ये कथितोऽस्ति।

यथा– पलिक्क्नीः, चख्ख्नतुः, अग्ग्निः, घ्घ्नन्ती इति, अत्र क्रमेण कखगघेभ्यः परः तत्सदृशाः एव यमाः सन्ति।

अवतरणिका– इसी क्रम में आगे अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय वर्णों के विषय में उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

अनुस्वारो विसर्गश्च ≍क ≍पौ चापि पराश्रितौ।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च।। 5।।

अन्वय–अनुस्वारः विसर्गः च, पराश्रितौ क≍पौ≍च अपि दुःस्पृष्टः च प्लुतः लृकारः एव च विज्ञेयः।। 5।।

अनुवाद–अनुस्वार, विसर्ग, बाद में स्थित जिह्वामूलीय क ≍तथा उपध्मानीय प ≍तथा दुःस्पृष्ट तथा प्लुत लकार (ल३) इन सभी वर्णों की संख्या कुल मिलाकर चौसठ समझनी चाहिए।। 5।।

'चन्द्रिका'–इसके अतिरिक्त ककार तथा खकार इन वर्णों के पहले आधे विसर्ग के समान ध्वनि को **जिह्वामूलीय** कहा जाता है तथा पकार एवं फकार इन वर्णों के पहले प्रयुक्त आधे विसर्ग के समान ध्वनि को **उपध्मानीय** संज्ञा प्रदान की गयी है। इसीप्रकार दो स्वरों के बीच में आए हुए, डकार तथा ढकार के स्थान पर सुनायी देने वाले, लकार तथा लृहकार वस्तुतः **दुःस्पृष्ट** की श्रेणी में गिने गए हैं, इनका केवल वेद में ही प्रयोग किया जाता है। इसीलिए यह संख्या इसे मिलाकर कुल चौसठ कही गयी है। अन्यथा लौकिक संस्कृत में तो यह संख्या कुल तिरेसठ ही है।

विशेष–(i) लकार तथा लृह्कार को ळकार तथा लृळकार के रूप में भी लिखा जाता है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–4)

वर्ण संख्या–64

21 स्वर वर्ण → + 25 व्यंजन वर्ण= 46 → + 4 अन्तस्थ, 4 उष्म= ↓ 52

← 6 अनुस्वार, विसर्ग, उपध्मानीय, जिह्वामूलीय + 56=4 यम ← 52

→ = 62, दो स्वरों के बीच आए, डकार तथा ढकार के स्थान में श्रूयमान लृकार, तथा लृहकार 2 दुःस्पृष्ट = यह संख्या कुल मिलाकर 64 हो जाती है।

संस्कृत–व्याख्या– क–आदि–च–आदि–ट–आदि–त–आदि–प–आदिपंचकात्मकेषु वर्गेषु एक–एकैकस्य वर्गस्य आद्यानाम् चतुर्णाम्, मध्ये एक–एकस्मात् पंचमे वर्णे परे मध्ये पूर्ववर्णसदृशः वर्णः यमः, इति प्रतिशाख्ये प्रसिद्धोऽस्ति। यथा पलिक्क्नीः, चख्ख्नतुः, अग्ग्निः, घ्घ्नन्ती, इत्यत्र क्रमेण कखगघेभ्यः, परे तत्सदृशाः, एव यमाः सन्ति। एवमेव क–पौ जिह्वामूलयोपध्मानीयौ दृःस्पष्टः, प्लुत लकारश्च, विद्वद्भिः बोध्यः।।

अवतरणिका– वर्णों की संख्या तिरेसठ तथा चौसठ बताने के बाद ग्रन्थकार, प्रस्तुत श्लोक में मुख द्वारा वर्णों के उच्चारण की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–

आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।। 6।।

अन्वय– आत्मा बुद्ध्या अर्थान् समेत्य, विवक्षया मनः युङ्क्ते। मनः काय–अग्निम् आहन्ति, सः मारुतम् प्रेरयति।। 6।।

अनुवाद–आत्मा, बुद्धि में स्थित अर्थों को एकत्र करके, कहने की इच्छा से मन के साथ संयुक्त होता है तथा वह मन शरीर की अग्नि को आहत करता है एवं वह जठराग्नि प्राण–वायु को प्रेरित करता है।। 6।।

'चन्द्रिका'–कहने का तात्पर्य है कि– जब हम किसी भी वर्ण का उच्चारण करना चाहते हैं, तो उसके उच्चारण से हमारे शरीर में इसप्रकार की प्रक्रिया होती है–

सर्वप्रथम हमारे शरीर में स्थित आत्मा, हमारी बुद्धि में विद्यमान अर्थों का संग्रह करके, बोलने की इच्छा से स्वयं को मन के साथ जोड़ता है अर्थात् वह मन से संयुक्त होकर उसे प्रेरित करता है। उस स्थिति में वह मन, उदर में स्थित जठराग्नि को इसके लिए आहत करता है तथा वह जठराग्नि हमारे शरीर में स्थित प्राणवायु को इसके लिए प्रेरित करती है। वर्णोच्चारण के विषय में इसी प्रक्रिया का हमेशा हमारे जीवन में प्रयोग होता है।

विशेष–(i) श्लोक में प्रयुक्त मारुत् से अभिप्राय प्राण–वायु से ग्रहण करना चाहिए। यद्यपि वायु की संख्या वस्तुतः पाँच मानी गयी है, प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान।

(ii) इनमें पाँच प्रकार की वायुओं की शरीर में भिन्न–भिन्न स्थानों पर स्थिति मानी गयी है। तदनुसार– 'प्राण' वायु 'हृदय' में स्थित होती है, जबकि 'गुदा' भाग में 'अपान' वायु विद्यमान रहती है। इसीप्रकार 'नाभि' मण्डल 'समान' वायु का स्थान है। 'उदान' वायु का स्थान शरीर में 'कण्ठ' होता है। इसके अलावा 'व्यान' वायु तो 'सम्पूर्ण शरीर में ही व्याप्त' रहता है। इस सम्बन्ध में कहा भी गया है कि–

प्राणोऽपानाः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः।
हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।।
उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः।।

(iii) ध्यातव्य है कि यहाँ वर्णोच्चारण की प्रक्रिया में केवल हृदय में स्थित प्राण–वायु ही अपनी भूमिका निर्वहण करती है, दूसरी वायुओं का इस सम्बन्ध में किसीप्रकार का योगदान नहीं होता है।

(iv) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–
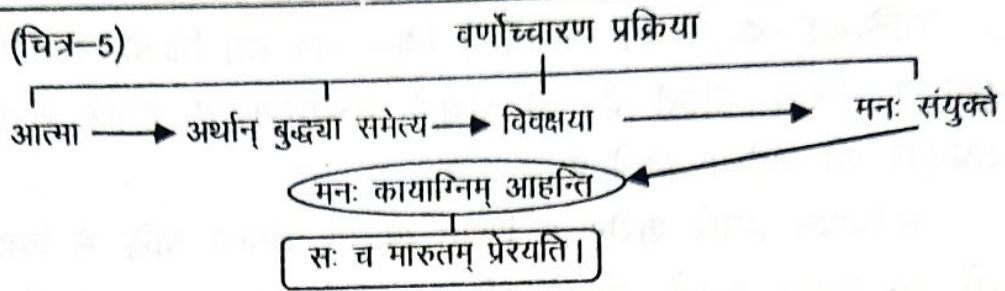
टिप्पणी– (i) समेत्य–सम्+ √इण्(गतौ)+ल्यप्, एकत्र करके।

(ii) विवक्षया– वक्तुम्, इच्छा विवक्षा, तया, बोलने की इच्छा से।

(iii) युङ्क्ते– √युज्+ तिप्+ आत्मनेपद, प्रथमपुरुष, एक वचन, जुड़ता है। युनक्ति।

संस्कृत–व्याख्या–यदा वयम् वक्तुम् किमपि वांछामः, तदा आत्मा अन्तःकरणम् अस्माकम्, घटपटादि–अर्थविशेषान् स्वीकया मत्या समेत्य एकत्रीकृत्य, संग्रहम् कृत्वा वा वक्तुम् कामया मनः युनक्तिः, सम्यक् रूपेण प्रेरयति, इति भावः। तत् च मनः कायाग्निम् जठरानलम् अभिहन्ति, आहतम् करोति, इति अभिप्रायः। सः च जठराग्निः प्राणाख्यम् वायुम् समुत्तेजयति, इति। अनुष्टुप् छन्दोऽत्र वर्तते, लक्षणम् पूर्वे कथितम्।

अवतरणिका– तत्पश्चात् प्राण वायु के बाद स्वर के उच्चारण की स्थिति को स्पष्ट करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

मारुतस्तूरसि चरन्चन्द्रं जनयति स्वरम्।
प्रातः सवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम्।। 7।।

अन्वय–मारुतः उरसि चरन्, प्रातः सवनयोगम् छन्दः गायत्रमाश्रितम् तम् मन्द्रम् स्वरम् जनयति।। 7।।

अनुवाद–जठराग्नि से प्रेरित हुआ 'प्राण' नामक वायु, हृदय प्रदेश में विचरण करता हुआ, प्रातःकाल में सवनकर्म के साधन के रूप मन्त्रों के लिए उपयोगी, गायत्री आदि छन्दों के आश्रित उस गम्भीर–स्वर को उत्पन्न करता है।। 7।।

'चन्द्रिका'– उदर में रहने वाली जठराग्नि से भलीप्रकार प्रेरित होकर वह प्राण नामक वायु, हमारे हृदय प्रदेश में विचरण करता हुआ,

प्रातःकाल में यज्ञादि–कर्मों के लिए उपयोगी मन्त्रों के तथा गायत्री आदि छन्दों से युक्त प्रसिद्ध, उस गम्भीर स्वर को उत्पन्न करता है।

कहने का अभिप्राय है कि हम प्रतिदिन जिन गायत्री आदि मन्त्रों का प्रातःकाल में यज्ञादि–कर्मों में प्रयोग करते हैं, वे सभी मन्त्र वस्तुतः इसी आन्तरिक शारीरिक–प्रक्रिया के माध्यम से गम्भीर–स्वर के रूप में बाहर आते हैं।

विशेष–(i) वर्णोच्चारण के लिए शरीर के अन्दर स्थित सम्पूर्ण प्रक्रिया का सूक्ष्मरूप से विश्लेषण किया गया है, जो ग्रन्थकार की सूक्ष्म–दृष्टि का परिचायक कहा जा सकता है।

(ii) वर्णोच्चारण में प्राणवायु की महत्ता प्रतिपादित की गयी है।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–6)
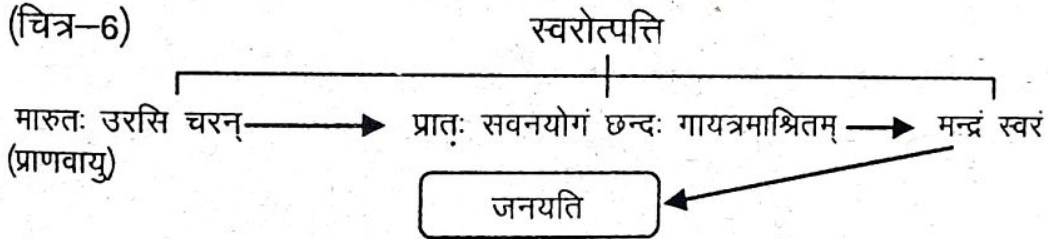
टिप्पणी– (i) चरन्–√चर्+ शतृ, विचरण करते हुए ।

(ii) जनयति–√जन्(जनी प्रादुर्भावे)+ णिच्+ तिप्, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, उत्पन्न करता है।

(iii) आश्रितम्– आ+√श्रि+ क्त, आश्रय ग्रहण किया हुआ।

संस्कृत–व्याख्या–प्राणाख्यः वायुः हृदये विचरन्, उषसि सवनकर्म–साधनमन्त्राणाम् उपयोगी गायत्री आख्यः छन्दः तेन छन्देन समन्वितम् तम् प्रथितम् गभीरम् स्वरम् ध्वनिविशेषम् समुत्पादयति। उत्पन्नम् करोतीत्यर्थः।। 7।।

अवतरणिका– इसी क्रम में आगे ग्रन्थकार माध्यन्दिन सवनकर्म में प्रयोग में आने वाले 'त्रिष्टुप्' तथा सायंकालिक सवनकर्म में प्रयुक्त होने वाले 'जगती' आदि छन्दों की उच्चारण प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यगं त्रैष्टुभानुगम्।
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगतम्।। 8।।

अन्वय– मारुतः कण्ठे चरन् त्रैष्टुभ–अनुगम्, माध्यन्दिन–युगम्, मध्यमम्, शीर्षण्यम् जागत–अनुगम्, तार्तीय–सवनम् तारम् स्वरम् जनयति।। 8।।

अनुवाद– **शरीर की अग्नि से प्रेरित होकर, 'प्राण' नामक वायु, कण्ठ में विचरण करता हुआ, 'त्रिष्टुप्' छन्द से युक्त, माध्यन्दिन सवन के अनुरूप मन्त्रों के लिए उपयोगी, मध्य तथा शिरोप्रदेश में संचरण करता हुआ, 'जगती' छन्द से युक्त, सायंकालिक यजन के अनुरूप मन्त्रों के लिए उपयोगी 'तारस्वर' को उत्पन्न करता है।। 8।।**

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने माध्यदिन सवन–कर्म में प्रयुक्त होने वाले, मन्त्रों के लिए उपयोगी त्रिष्टुप् छन्दों के उच्चारण की प्रक्रिया तथा सायंकालिक यजन के अनुरूप जगती आदि छन्दों के उच्चारण की प्रक्रिया को स्पष्ट किया है, क्योंकि इससे पूर्व श्लोक में प्रातःकालिक सवन में प्रयुक्त होने वाले, गायत्री छन्द की गभीर–स्वर में उच्चारण की बात का उल्लेख किया जा चुका था। तदनुसार–

(क) माध्यन्दिन सवन अर्थात् याग–कर्म में प्रयुक्त होने वाले, त्रिष्टुप् आदि छन्दों के उच्चारण में, कायग्नि से संप्रेरित हुआ 'प्राण' वायु हमारे कण्ठभाग में संचरण करते हुए, उन मन्त्रों के अनुरूप तथा उपयोगी मध्यम स्वर का उच्चारण करता है।

(ख) इसीप्रकार सायंकालिक याग के अनुरूप मन्त्रों के लिए उपयोगी 'जगती' आदि छन्दों को तारस्वर से उच्चारण हेतु, यही प्राण वायु व्यक्ति के शिरोप्रदेश में परिभ्रमण करता हुआ बाहर आता है।

विशेष–(i) माध्यन्दिन सवन तथा सायंकालिक सवन में प्रयोग में आने वाले, छन्दों क्रमशः त्रिष्टुप् तथा जगती के उल्लेख के साथ उनके लिए उपयोगी क्रमशः मध्यम स्वर तथा तारस्वर का उल्लेख

ग्रन्थकार के वैदिक मन्त्रोच्चारण विषयक सूक्ष्म–ज्ञान को प्रदर्शित कर रहा है।

(ii) ब्राह्मण–ग्रन्थों में प्रातःकालिक, माध्यंदिन तथा सायंकालिक सवनकर्म में भिन्न–भिन्न छन्दों के प्रयोग का विधान, विस्तार से किया गया है।[1]

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–7) विभिन्न यज्ञों में प्रयुक्त छन्दों के छन्द व उच्चारण स्थान

प्रातःकालिक सवन	माध्यन्दिन सवन	सायंकालिक सवन
गायत्री छन्द गभीर स्वर प्राणवायु का हृदय–देश में संचरण	त्रिष्टुप छन्द मध्यम स्वर प्राणवायु का कण्ठ–भाग में संचरण	जगती छन्द तारस्वर प्राणवायु का शिरो–प्रदेश में संचरण
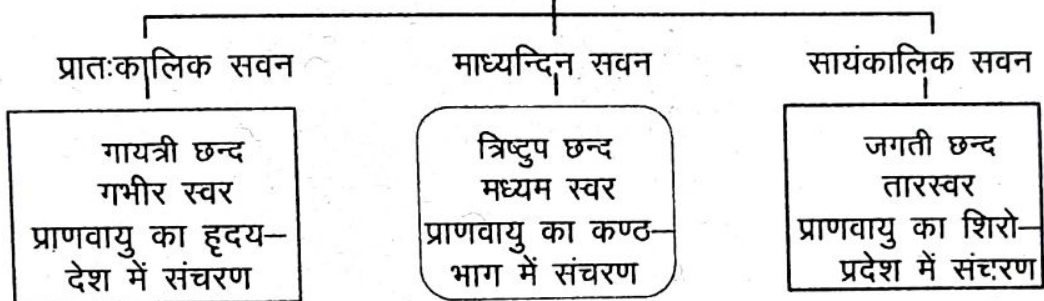
टिप्पणी– (i) कण्ठे– कण्ठ+सप्तमी विभक्ति, एक वचन,कण्ठ में।

संस्कृत–व्याख्या–प्राणाख्यः वायुः, माध्यन्दिने यागकर्मणि उपयोगी त्रैष्टुभम् छन्दसम् मध्यमनामाख्यम् स्वरम् कण्ठप्रदेशे विचरन्, उत्पन्नम् करोति। एवमेव एषः खलु प्राणवायुः सायंकालिके सवनकर्मणि तत्रो–पयोगी जगती छन्दसम् शिरोप्रदेशे विचरन्, तारस्वरेण उच्चैः वा जनयति।

अवतरणिका– इसप्रकार यहाँ तक प्रातःकालिक, माध्यन्दिन तथा सायंकालिक सवनकर्म में प्रयुक्त होने वाले, विभिन्न छन्दों के लिए उपयोगी स्वरों के अनुसार, प्राणवायु का क्रमशः हृदयप्रदेश, कण्ठप्रदेश तथा शिरोप्रदेश से गभीर, मध्यम तथा तारस्वर के उच्चारण की बात का कथन करने के बाद, ग्रन्थकार प्राण–वायु के मूर्धा से टकराने के बाद मुख में स्थानों को प्राप्त करके, अक्षरों को जन्म देने की बात का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

[1] . द्रष्टव्य–लेखक द्वारा अनूदित तथा सम्पादित शांखायन ब्राह्मण, भूमिका भाग, छन्दों का महत्त्व शीर्षक। प्रकाशक– चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली–7, 2020।

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापाद्य मारुतः।
वर्णा जनयते तेषां विभागः पंचधा स्मृतः।। 9।।

अन्वय– सः मारुतः उदीर्णः, मूर्धनि अभिहतः, वक्त्रम् आपाद्य वर्णान् जनयते, तेषाम् विभागः पंचधा स्मृतः।। 9।।

अनुवाद–वह प्राण–वायु मूर्धा से टकराने के बाद, मुख में कण्ठादि स्थानों को प्राप्त करके, वर्णों को उत्पन्न करता है। उन वर्णों का विभाग पाँच प्रकार से कहा गया है।।9।।

'चन्द्रिका'–इसके बाद यह प्राण–वायु व्यक्ति के मुख में स्थित मूर्धा भाग से टकराने के बाद ही, मुख में कण्ठ, तालु आदि उच्चारण स्थानों को प्राप्त करके, विभिन्न प्रकार के वर्णों को उत्पन्न करता है। ये सभी वर्ण जो, मुख से उत्पन्न होते हैं, उन्हें अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से पाँच विभागों में बाँटा जा सकता है।

विशेष–(i) उल्लेखनीय है कि यह पाँच प्रकार का विभाग ग्रन्थकार ने स्वर, काल, स्थान, बाह्यप्रयत्न तथा आभ्यन्तर प्रयत्न के रूप में किया है, जिसका कथन वे अग्रिम श्लोक में करेंगे।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–8)
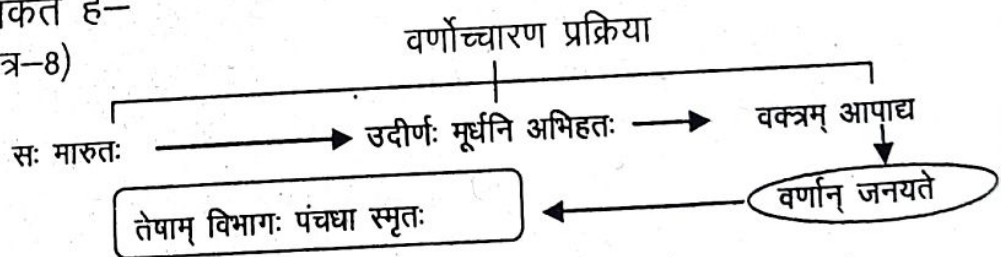
टिप्पणी– (i) अभिहतः– अभि+ √हन्+क्त, टकराया हुआ।

(ii) स्मृतः– √स्मृ+क्त, स्मरण किया गया, कहा गया ।

संस्कृत–व्याख्या– ग्रन्थकारः कथयति यत्–पूर्वे कथितः प्राणवायुः मूर्धनि अभिहतः प्रतिघातकृतः, मुखे कण्ठादिस्थानभागम् प्राप्य, विविधानि अक्षराणि उत्पादयति। तेषाम् वर्णानाम् विभागः, वस्तुतः पंचविधः कथितः विद्वद्भिः।।9।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार वर्णों के पाँच प्रकार के विभाग का कथन करते हैं–

स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः।
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत।। 10।।

अन्वय– वर्ण–विदः स्वरतः, कालतः, स्थानात् प्रयत्न–अनुप्रदानतः, इति प्राहुः। तम् निपुणम् निबोधत।। 10।।

अनुवाद– वर्णों को जानने वाले विद्वान् लोग, स्वर, काल, स्थान, आभ्यन्तर–प्रयत्न तथा बाह्य–प्रयत्न के भेद से वर्णों का विभाजन पाँच प्रकार से करते है, इसे भलीप्रकार समझ लेना चाहिए।। 10।।

'चन्द्रिका'–ग्रन्थकार कहते हैं कि जो विद्वान् वर्णों के सम्बन्ध में सूक्ष्म–ज्ञान रखते हैं, उन्होंने स्वर, काल, स्थान, आभ्यन्तर–प्रयत्न तथा बाह्य–प्रयत्न की दृष्टि से कुल पाँच प्रकार के भेदों को उल्लेख किया है। इसलिए वर्णों के उच्चारण आदि के सम्बन्ध में जिज्ञासा रखने वाले व्यक्ति को इस विषय में सम्यक् प्रकार से समझ लेना चाहिए, जिससे वर्णोच्चारण के सम्बन्ध में किसीप्रकार की त्रुटि न हो।

विशेष–उपर्युक्त श्लोक में ग्रन्थकार ने तीन बातों का मुख्यरूप से कथन किया है–

(i) **प्रथम**, उच्चारणादि की दृष्टि से जिन वर्णों के पाँच विभागों का यहाँ उल्लेख किया गया है, वह केवल हमारे मस्तिष्क की ही उपज नहीं है, अपितु इस सम्बन्ध में प्राचीन विद्वानों, विषय–विशेषज्ञों ने भी कथन किया है।

(ii) **द्वितीय**, जिन वर्णों के विभागों को यहाँ हमने पाँच प्रकार का बताया है, वे इससे कम या अधिक नहीं होते हैं। अतः उनके पाँच प्रकार ही मानने चाहिएँ।

(iii) **तृतीय**, जो व्यक्ति वर्णोच्चारण के विषय में गम्भीररूप से अध्ययन करने का इच्छुक है, उसे इस विषय में विस्तार से सावधानी–पूर्वक अध्ययन करके, भलीप्रकार समझकर इन्हें हृदयंगम कर लेना

चाहिए, जिससे उच्चारण के विषय में किसीप्रकार की त्रुटि न हो तथा उससे होने वाले अनिष्ट से बचा जा सके।

(iv) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–
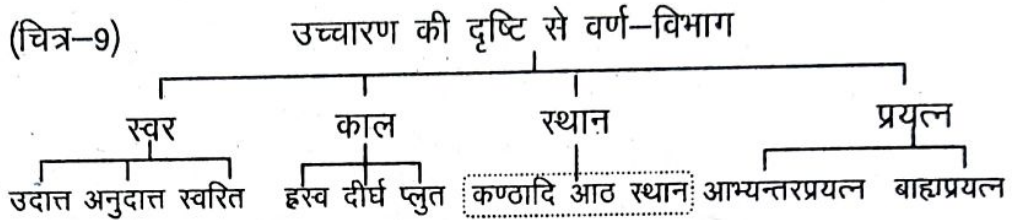
टिप्पणी– (i)स्वरतः– स्वर+तसिल्, स्वर के अनुसार।

(ii) वर्णविदः– वर्णानाम् उच्चारणप्रकारम् जानन्ति ये ते, वर्णों को जानने वाले विद्वान् लोग।

(iii) प्राहुः– प्र+√ब्रू (ब्रू को विकल्प से आह आदेश) +परस्मैपदी, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन, कहते हैं।

संस्कृत–व्याख्या–ये वर्णविदः विद्वांसः सन्ति, ते अक्षरज्ञाः स्वरेण, कालानुसारेण, स्थानेन, आभ्यन्तरबाह्यप्रयत्नाभ्याम् इति, रूपेण वर्णानाम् भेदम् कथयन्ति। तेषाम् मते एतेषाम् वर्णानाम् पंचविभागः उक्तप्रकारेण कर्तुम् शक्यते। विषयेऽस्मिन् ये जिज्ञासवः सन्ति, तैः अवश्यमेव अवगन्तव्यम्, अनेन करणेन नैव त्रुटिः भविष्यति उच्चारणे, नैव च काऽपि अनिष्टप्राप्तिः भविष्यति।।10।।

अवतरणिका–इसप्रकार उच्चारण की दृष्टि से वर्णों का, पाँच प्रकार के विभाग का उल्लेख करने के बाद, प्रस्तुत श्लोक में प्रथम दो प्रकार अर्थात् स्वर तथा काल–विभाग को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि।।11।।

अन्वय– स्वराः उदात्तः च, अनुदात्तः च, स्वरितः च, त्रयः (भवन्ति), कालतः, अचि ह्रस्वः, दीर्घः, प्लुतः इति नियमाः (भवन्ति)।। 11।।

अनुवाद–स्वरों की दृष्टि से उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित ये तीन भेद होते हैं, जबकि उच्चारण काल के विचार से ये ही अच् ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत तीन प्रकार के होते हैं।। 11।।

'चन्द्रिका'–इनमें उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित का वेदों में ही प्रयोग होता है। लौकिक संस्कृत में इनका प्रयोग नहीं होता है। वहाँ उदात्त स्वर में किसी प्रकार के चिह्न का प्रयोग नहीं करते हैं तथा उसका मुख में उच्च स्थानों से उच्चारण किया जाता है, जबकि अनुदात्त स्वर के नीचे यहाँ पड़ी लाइन(क॒) का प्रयोग करते हैं। इसके अलावा स्वरित वर्ण के ऊपर खड़ी लाइन(क॑) का प्रयोग करते हुए उसे प्रदर्शित किया जाता है।

इनमें ह्रस्व को एकमात्रिकं, दीर्घ को दो मात्रिक तथा प्लुत को तीन मात्रिक भी कहते हैं। प्लुत में तीन मात्राकाल होने से, इसे प्रदर्शित करने के लिए उस वर्ण के आगे तीन (३) का अक्षर लिख देते हैं। जैसे– ओ३म्। यहाँ प्रयुक्त ओ का तीन मात्राकाल होने से, इसके आगे तीन का अक्षर लिख दिया गया है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने उच्चारण की दृष्टि से वर्णों के पाँच प्रकार के विभाग में से, केवल दो ही विभागों को स्पष्ट किया है। शेष तीन प्रकारों को आगे के श्लोकों में कहेंगे।

(ii) ध्यातव्य है कि उक्त दोनों विभाग केवल स्वरों में ही होते हैं, व्यंजनों में नहीं। इसीलिए ग्रन्थकार ने श्लोक में 'अचि' पद का प्रयोग किया है।

(iii) इसका अभिप्राय यही है कि विभाग के ये नियम केवल स्वरों पर ही लागू होते हैं, व्यंजनों पर नहीं।

(iv) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–10)
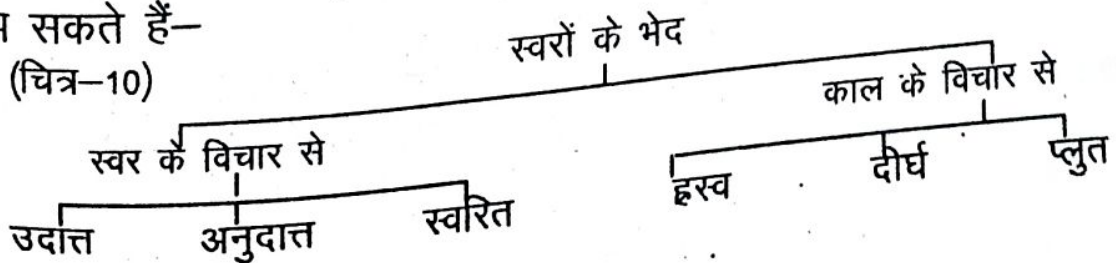
टिप्पणी– (i) अचि– अच्+ङि, सप्तमी विभक्ति, एक वचन, स्वर में। यहाँ प्रयुक्त अच् प्रत्याहार है, जिसमें सभी स्वर आ जाते हैं। इसीलिए यहाँ इस प्रत्याहार के सप्तमी पद का प्रयोग किया गया है।

संस्कृत–व्याख्या– उदात्तः, इति आख्यः। अनुदात्तः, इति नाम्नः। स्वरितः, इति नाम्ना, प्रचलिताः स्वरस्य त्रिसंख्यकाः भेदाः भवन्ति, एतेषाम् प्रयोगस्तु केवलम् वेदे खलु भवति। नैव लौकिके संस्कृते साहित्ये वा एतेषाम् प्रयोगः क्रियते। एवमेव कालावधिम् अधिकृत्य यः विभागः वर्णानाम् क्रियते, तत्तु ह्रस्वः, दीर्घः प्लुतश्च अनेन रूपेण त्रिसंख्यको वै भवति। नैव अल्पं न च अधिकमिति।। 11।।

अवतरणिका– यहाँ तक स्वरों तथा काल के विचार से स्वरों के भेदों का उल्लेख करने के बाद, प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार वेदों में उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित के संगीत में प्रयुक्त होने वाले स्वरों को दृष्टिगत करते हुए, उनके उच्चारण प्रकारों का कथन करते हैं–

उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपंचमाः।। 12।।

अन्वय–उदात्ते निषाद–गान्धारौ, अनुदात्ते ऋषभ–धैवतौ,एते षड्ज–मध्यम–पंचमाः स्वरित–प्रभवाः हि (भवन्ति)।। 12।।

अनुवाद– उदात्त में निषाद–गान्धार, अनुदात्त में ऋषभ–धैवत तथा स्वरित में षड्ज–मध्यम–पंचम संगीत–शास्त्र में प्रसिद्ध, इन सात स्वरों में ही अन्तर्भाव समझना चाहिए।। 12।।

'चन्द्रिका'–भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक से ग्रन्थकार का संगीतशास्त्र विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है। इसीलिए उन्होंने यहाँ संगीत में प्रयुक्त होने वाले निषाद, गान्धार, ऋषभ, धैवत, षड्ज, मध्यम तथा पंचम नाम के, संगीत में प्रयोग आने वाले सात स्वरों का उल्लेख किया है।

(ii) 'हि' निपात अथवा 'अव्यय' शब्द का प्रयोग यहाँ 'निश्चय' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है। इसके माध्यम से ग्रन्थकार अपने कथन में निश्चयात्मकता की प्रतीति कराना चाहते हैं।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–11)
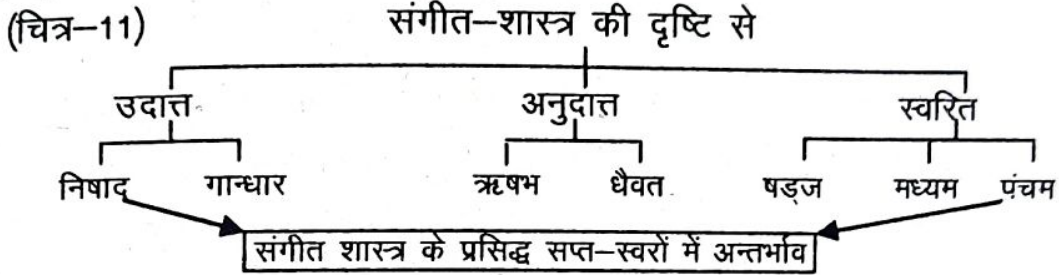
(iv) संगीतशास्त्र में स्वरों की संख्या सात होती है, जिनका अन्तर्भाव ग्रन्थकार ने यहाँ उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित इन तीनों स्वरों में किया है। संगीतशास्त्र के सात स्वर इसप्रकार हैं–

निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः।
पंचमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः।।

(v) इनमें भी 'निषाद' नामक स्वर की व्युत्पत्ति इसप्रकार दी गयी है– **निषीदति मनोऽस्मिन् इति, निषादः।**

(vi) इसीप्रकार 'ऋषभ' नामक स्वर की व्युत्पत्ति इसप्रकार की गयी है– **ऋषति बलीवर्दस्वरसादृश्यं गच्छति, इति ऋषभः।**

(vii) जबकि गान्धार देश में उत्पत्ति होने के कारण इसे गान्धार कहा जाता है– **गान्धारदेशे भवः, गान्धारः।**

(viii) इसीप्रकार मध्यमस्वर के विषय में **'मध्ये भवः, इति' मध्यमः।** तथा धैवत के बारे में– **धीमतामयं धैवतः, पृषोदरादिः** तथा पंचम स्वर के लिए **'पंचमानां पूरणः पंचमः'** व्युत्पत्ति बतायी गयी है।

(ix) इन पाँचों स्वरों के सम्बन्ध में एक श्लोक इसप्रकार कहा गया है–

षड्जं रौति मयूरस्तु गावो नर्दन्ति चर्षभम्।
अजाविकौ च गान्धारं क्रौंचो नदति मध्यमम्।।

पुष्यसाधारणे काले कोकिलो रौति पंचमम्।
अश्वस्तु धैवतं रौति निषादं रौति कुंजरः।।

टिप्पणी– (i)एते– एतत्+ प्रथमा विभक्ति, पुल्लिंग, बहुवचन, ये।

(ii) निषादः– 'षद्लृविशरणगत्यवसादनेषु' तथा 'हलश्च' सूत्रों से 'घञ्' प्रत्यय तथा 'सदिरप्रतेः' सूत्र से 'षत्वम्' होकर 'निषाद' शब्द की निष्पत्ति हुई है।

(iii) इसीप्रकार 'ऋषभ' शब्द की निष्पत्ति 'ऋषी गतौ' धातु से 'ऋषिवृषिभ्याम् कित्' इत्यादि उणादि सूत्र से 'अभच्' प्रत्यय का प्रयोग होकर 'ऋषभ' पद निर्मित हुआ।

(iv) 'गान्धारदेशे भवः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'गन्धार' पद से 'अण्' प्रत्यय करने पर 'गान्धार' शब्द की निष्पत्ति हुई है।

(v) इसीप्रकार 'मध्ये भवः' इस अर्थ में 'मध्यान्मः' सूत्र से 'म' प्रत्यय का प्रयोग होकर 'मध्यम' पद निष्पन्न हुआ है।

(vi) इसके अतिरिक्त 'धीमतामयम्' इस अर्थ में 'पृषोदरादीनि..' इत्यादि पाणिनिसूत्र से 'धैवत' पद निष्पन्न होता है।

(vii) इसीप्रकार 'पंचमः' पद 'पंचानां पूरणः' इस अर्थ में 'तस्य पूरणे' सूत्र से 'डट्' प्रत्यय करके, 'नान्तात्...' इत्यादि सूत्र से 'मट्' प्रत्यय होकर बना है।

संस्कृत–व्याख्या– उदात्ताख्ये स्वरे संगीतशास्त्रस्य निषादगान्धारौ एतौ स्वरौ, अनुदात्ताख्ये स्वरे च संगीतशास्त्रस्य ऋषभदैवतनामकौ स्वरौ अन्तर्भूतौ स्तः। एवमेव स्वरिताख्ये स्वरे षड्जमध्यमपंचमाख्याः संगीतशास्त्रस्य स्वराः अन्तर्भूताः भवन्ति, इति। नैव विषयेऽस्मिन् सशंयलेशोऽपि विद्यते।। 12।।

अवतरणिका– यहाँ तक ग्रन्थकार ने वर्णों के पाँच प्रकार के भेदों में से स्वर तथा काल पर आधारित दो भेदों के विषय में विस्तार से कथन किया। तत्पश्चात् उनके तीसरे भेद 'स्थान' के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च।। 13।
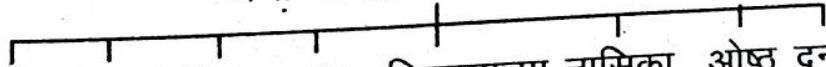
अन्वय– वर्णानाम् उरः, कण्ठः, शिरः, तालुः, जिह्वामूलम् नासिका–ओष्ठ दन्ताः च (इमे) अष्टौ स्थानानि भवन्ति।। 13।।

अनुवाद–वर्णों के वक्ष (उरः), कण्ठ, शिर, तालु, जिह्वामूल, नासिका, औष्ठ, दन्त ये आठ उच्चारण स्थान होते हैं।। 13।।

'चन्द्रिका'–उच्चारण स्थान की दृष्टि से वर्णों के आठ भेद होते हैं, जिनमें वक्षस्थल, कण्ठ, सिर, तालु, जिह्वामूल, नासिका, ओष्ठ तथा दन्त ये आठ स्थान निर्धारित किए गए हैं। सभी वर्णों का उच्चारण इन स्थानों में से किसी न किसी स्थान से ही होता है।

विशेष– (i) यद्यपि किसी भी वर्ण के उच्चारण में मुखादि में प्रायः अधिकांश स्थानों की मिलकर भूमिका होती है, किन्तु स्थान की प्रमुखता की दृष्टि से यह विभाजन किया गया है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–12)

वर्णों के आठ उच्चारण स्थान

उरः कण्ठः शिर, तालुः जिह्वामूलम् नासिका ओष्ठ दन्ताः

संस्कृत–व्याख्या–सर्वेषाम् अक्षराणाम् वर्णानाम् वा वक्षः, कण्ठः, उत्तमांगम्, तालुकाकुदमित्यर्थः, रसनामूलम्, नासिका, ओष्ठश्च तथैव दन्ताश्च, इति अनेन प्रकारेण अष्टसंख्यकानि उच्चारणस्थानानि भवन्ति। इति, अभिप्रायः।। 13।।

अवतरणिका– यहाँ तक अक्षरों के आठ उच्चारण स्थानों का उल्लेख करने के बाद, ग्रन्थकार यहाँ व्याकरण की दृष्टि से विसर्ग की आठ प्रकार की स्थिति का कथन करते हैं –

ओभावश्च विवृत्तिश्च शषता रेफ एव च।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः।। 14।।

अन्वय– ऊषमणः ओभावः विवृत्तिः शषसाः रेफः जिह्वामूलम् उपध्मा च अष्टविधः गतिः (भवति)।। 14।।

अनुवाद–विसर्गों का ओकार हो जाना, सन्धि का अभाव होना, लोप हो जाना, शकार, षकार तथा सकार रूप में परिवर्तित होना, रेफ हो जाना, जिह्वामूलीय होना और उपध्मानीय होना, ये आठ प्रकार की गति (स्थिति) होती है।। 14।।

'चन्द्रिका'–व्याकरण के नियमों के अनुसार विसर्गों को ओकार रूपमें हो जाना, सन्धि की स्थिति होने पर भी उसका न होना, विसर्गों का लोप हो जाना अथवा विसर्गों का शकार या षकार अथवा फिर सकार रूप में बदल जाना, इसके अलावा विसर्गों का रेफ के रूप में परिवर्तित हो जाना। इसीप्रकार विसर्गों का जिह्वामूलीय रूप में बदलना और विसर्गों का उपध्मानीय रूप में परिवर्तित होना, इसप्रकार कहे गए, विसर्गों की ये आठ गतियाँ अर्थात् स्थितियाँ होती हैं।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने विभिन्न परिस्थितियों में होने वाली विसर्गों की आठ स्थितियों का उल्लेख अत्यन्त संक्षेप में किया है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–13)

विसर्गों की आठ प्रकार की गति(स्थिति)

ओकार	सन्ध्यभाव/लोप	शकार	षकार	सकार	रेफ	जिह्वामूलीय	उपध्मानीय
(शिवोवन्द्यः)	(क ईशः)	(हरिश्शेते)	(आविष्कृतम्)	(कस्कः)	(अहर्पतिः)	(कः ͡ करोति)	(कः ͡ पचति)

एते उदाहरणानि सन्ति
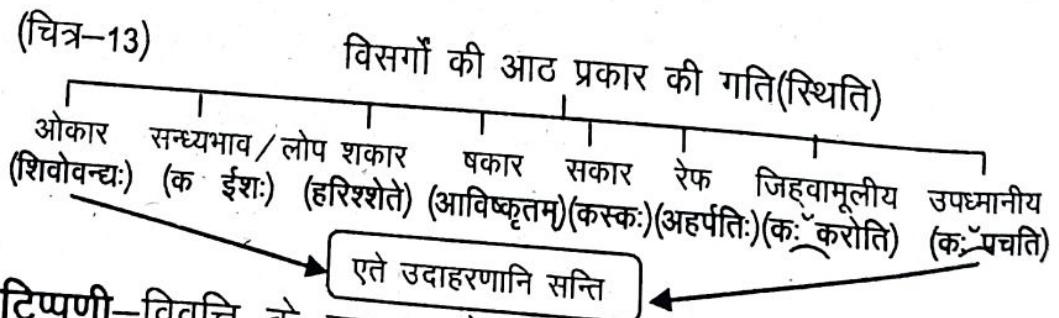
टिप्पणी–विवृत्ति के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य शिक्षा का कथन इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। तदनुसार–

द्वयोस्तु स्वरयोर्मध्ये सन्धिर्यत्र न दृश्यते।
विवृत्तिस्तत्र विज्ञेया य ईशेति निदर्शनम्।।

अर्थात् विसर्गों के स्थान पर आदेश के रूप में आए हुए, यकारादि वर्णों का लोप हो जाने पर, 'य ईशः' इत्यादि उदाहरणों में अकार तथा

ईकार इन दो स्वरों के मध्य में किन्हीं कारणों से सन्धि का न होना ही विवृत्ति कहलाता है।

संस्कृत–व्याख्या–ऊष्मणः अर्थात् विसर्गस्य ओकाररूपेण परिणतिः अर्थात् सन्ध्याभावः, शकारषकारसकाराः भविते सति, एवमेव विसर्गस्य रेफकारो भवति। जिह्वामूलीयम् उपध्मानीयम् च अष्टविधाः, इति विसर्गाणाम् गतिः अर्थात् स्थितिर्भवति।। 14।।

अवतरणिका– विसर्गों की आठ प्रकार की गति अर्थात् स्थिति का उल्लेख करने के बाद, ग्रन्थकार स्वर–स्थानिक, विसर्ग–स्थानिक की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–

यद्योभावप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम्।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद् यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः।।15।।

अन्वय–यदि उकार–आदि–परम् पदम् ओ–भाव–प्रसन्धानम्, तादृशम् स्वर–अन्तम् विद्यात्, यत् अन्यत् ऊष्माणः व्यक्तम् (भवति)।15।

अनुवाद– यदि उकार आदि पद, बाद में हो एवं उससे पहले ओकार का प्रयोग हुआ हो, तो उसप्रकार के ओकार को स्वरस्थानिक समझना चाहिए, जबकि इसके विपरीत उकार आदि पद, बाद में न रहने पर उसके पूर्व, ओकार को विसर्गस्थानिक मानना चाहिए।।15।।

'चन्द्रिका'–यहाँ ग्रन्थकार ने 'स्वर–स्थानिक' तथा 'विसर्ग–स्थानिक' की स्थिति को स्पष्ट किया है, तदनुसार–

उकार है आरम्भ में जिसके, ऐसे पद के पहले, यदि ओकारादि पद प्रयुक्त हुआ हो, तो उस प्रकार के ओकार की **स्वरस्थानिक** संज्ञा होती है।

इसी के ठीक विपरीत यदि उकारादि पद बाद में प्रयुक्त नहीं होता है, तो इससे पहले प्रयुक्त होने वाला ओकार **विसर्गस्थानिक** होता है।

विशेष–(i) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–14)
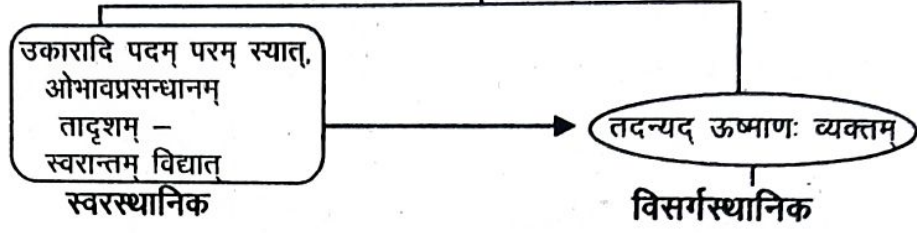
संस्कृत–व्याख्या–उकारादिपदम् यदि परम् स्यात्, तस्मात् पूर्वे चेत् ओकारपरिज्ञानम् भवेत्। तादृशम् विधम् ओकारम् वस्तुतः स्वरस्थानिकम् विजानीयात्, किन्तु भिन्ने सति, किमपि विसर्गस्य स्फुटम् खलु वक्तव्यम्, एतदेव विसर्गस्थानिकम् भवति।। 15।।

अवतरणिका–इसके पश्चात् ग्रन्थकार कवर्गादि के पंचम वर्ण (यम्), अन्तस्थ से संयुक्त हकार तथा असंयुक्त हकार के उच्चारण स्थान को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–

हकारं पंचमैर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम्।
उरस्यं तं विजानीयात् कण्ठ्यमाहुरसंयुतम्।।16।।

अन्वय– पंचमैः युक्तम् अन्तस्थाभिः संयुतम्, हकारम् उरस्यम् विजानीयात्, असंयुतम् तम् कण्ठ्यम् आहुः।। 16।।

अनुवाद–कवर्ग आदि के पंचम वर्ण (ङ्, ञ्, ण्, न, म) तथा अन्तस्थ (य्, व्, र्, ल्) वर्ण से संयुक्त हकार को बुद्धिमान् व्यक्ति हृदय–स्थानिक समझता है, जबकि असंयुक्त हकार को सुधीजनों ने कण्ठ–स्थानीय कहा है।। 16।।

'चन्द्रिका'–अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) यहाँ ग्रन्थकार ने अत्यन्त संक्षिप्त सूत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है, क्योंकि श्लोक में केवल पंचम पदों से युक्त पद का प्रयोग किया है, जिसका अभिप्राय पाठक को कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग से ग्रहण करके, उन वर्गों के पंचम वर्ण अर्थात् ङ, ञ, ण, न, म वर्णों से अभिप्राय लेना पड़ता है, तभी श्लोक का अर्थ स्पष्ट होता है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–15)
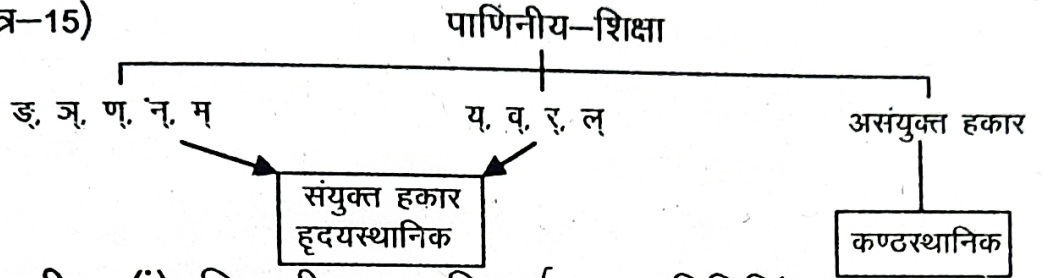
टिप्पणी– (i) विजानीयात्– वि+√ज्ञा + विधिलिंग लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, जानना चाहिए।

संस्कृत–व्याख्या–अत्र ग्रन्थकारः कथयति यत्–कवर्गादेः ङकारा–दिभिः मिश्रितम् अन्तःस्थाभिः यवरलवैः संयुतम् सम्मिलितम् वा हकार–वर्णम् उरस्यम् हृदयस्थानिकम् ज्ञातव्यम्। असम्मिलितम् हकारम् कण्ठ–स्थानिकम् विद्यात्। विषयेऽस्मिन् ह्मलयति ह्वलयति वा उदारणम् विद्यते।। 16।।

अवतरणिका– यहाँ तक संयुक्त हकार तथा असंयुक्त हकार की उच्चारण स्थिति को स्पष्ट करने के बाद, ग्रन्थकार स्वर तथा व्यंजनादि वर्णों के उच्चारणस्थान का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू।
स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः।। 17।।

अन्वय– अहौ कण्ठ्यौ, उपू ओष्ठजौ (बोध्यौ)। इचुयशाः तालव्याः, ऋटुरषाः मर्धन्याः स्युः। लृतुलसाः दन्त्याः स्मृताः।। 17।।

अनुवाद– अकार तथा हकार ये दोनों कण्ठस्थानीय होते हैं तथा उकार एवं पवर्ग (प्, फ्, ब्, भ्, म्) इन्हें ओष्ठस्थानीय मानना चाहिए, जबकि इकार और चवर्ग(च्, छ्, ज्, झ्, ञ्), यकार तथा शकार तालु स्थानीय एवं ऋकार तवर्ग(त्, थ्, द्, ध्, न्) लकार तथा सकार इन सभी का उच्चारण स्थान 'दन्त' कहा गया है।। 17।।

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने कण्ठस्थानीय, ओष्ठ–स्थानीय, तालुस्थानीय, मूर्धास्थानीय तथा दन्तस्थानीय वर्णों का विस्तार से उल्लेख किया है। तदनुसार–

(क) **कण्ठस्थानीय**–अकार, हकार।

(ख) **ओष्ठस्थानीय**–उकार, पवर्ग (प्,फ्,ब्,भ्,म्)

(ग) **तालुस्थानीय**– इकार, यकार, शकार, चवर्ग, (च्,छ्,ज्,झ्,ञ्)

(घ) **मूर्धास्थानीय**– ऋकार, रकार, षकार, टवर्ग (ट्,ठ्,ड्,ढ्,ण्)

(ङ) **दन्तस्थानीय**–लृकार, लकार, सकार, तवर्ग (त्,थ्,द्,ध्,न्)

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने कवर्ग के बारे में उल्लेख नहीं किया है, किन्तु सम्पूर्ण कवर्ग (क्,ख्,ग्,घ्,ङ्) भी कण्ठस्थानीय है।

(ii) इस सम्बन्ध में 'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः' सूत्र प्रमाण है।

(iii) यद्यपि अग्रिम सूत्र में ग्रन्थकार ने कवर्ग को जिह्वामूल कहा है।

(iv) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–16)

उच्चारण स्थान

कण्ठ	ओष्ठ	तालु	मूर्धा	दन्त
अकार हकार	उकार, पवर्ग प्, फ्, ब्, भ्, म्	इकार, चवर्ग च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, यकार तथा शकार	ऋ, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, ष्, र्	लृकार त्, थ्, द्, ध्, न् लकार तथा सकार
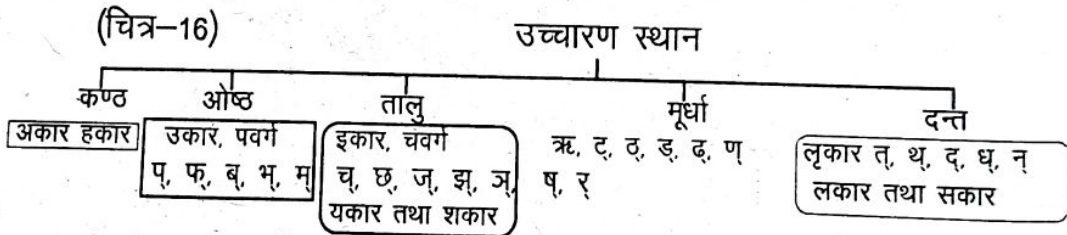
टिप्पणी–(i) √स्मृ+क्त+जस्,प्रथमा विभक्ति, बहुवचन, कहे गए हैं।

संस्कृत–व्याख्या–ग्रन्थकारः वर्णानाम् उच्चारणस्थानम् मुखे विस्तरेण कथयति यत्– अकारहकारौ एतौ मुखे गलस्थानिकौ स्तः। उकारपवर्गौ एतौ ओंष्ठजौ स्मृतौ, बोध्यौ वा। एवंच इकारचवर्गयकार–शकाराः एते वर्णाः तालुस्थानीयाः कथिताः सन्ति। तथा ऋकारटवर्ग–रकारषकाराः मूर्धन्याः मूर्धजाः वा भवेयुः। एवमेव लृकारतवर्गलकार–सकाराः दन्त्याः दन्तस्थानीयाः कथ्यन्ते, विद्वद्भिः।। 17।।

अवतरणिका–इससे पूर्व श्लोक में ग्रन्थकार ने कण्ठस्थानीय, ओष्ठस्थानीय, मूर्धास्थानीय, तथा दन्तस्थानीय वर्णों का उल्लेख किया। अतः प्रस्तुत श्लोक में जिह्वामूलीय दन्तोष्ठ्य कण्ठतालव्य, तथा कण्ठोष्ठ्य वर्णों के विषय में कथन करते हैं–

जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः।
एऐ तु कण्ठतालव्या ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ।। 18।।

अन्वय– कुः तुः जिह्वामूले प्रोक्तः, वः दन्त्योष्ठ्यः स्मृतः, एऐ कण्ठतालव्यौ (मन्तव्यौ), ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ।।18।।

अनुवाद– विद्वानों ने कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्) को जिह्वामूल तथा वकार को दन्त्योष्ठ स्थानीय कहा है। इसीप्रकार एकार, ऐकार को कण्ठ तथा तालु स्थानीय एवं ओकार और औकार को कण्ठ तथा ओष्ठ से उत्पन्न होने वाला माना है।।18।।

'चन्द्रिका'–इस श्लोक में भी ग्रन्थकार ने शेष वर्णों के उच्चारण स्थानों के विषय में उल्लेख किया है, जिसे हम इसप्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं–

(क) **जिह्वामूलीय–** कवर्ग (क्,ख्,ग्,घ्,ङ्)

(ख) **दन्तोष्ठीय –** वकार ।

(ग) **कण्ठतालव्यीय–** ए, ऐ।

(घ) **कण्ठोष्ठ्य–** ओ, औ ।

विशेष–(i) जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, ग्रन्थकार ने कवर्ग को कण्ठस्थानीय न मानकर जिह्वामूलीय श्रेणी में रखा है।

(ii) ए, ऐ, ये दोनों स्वरवर्ण कण्ठ तथा तालु दोनों के संयुक्त सहयोग से उच्चारण किए जाते हैं। इसलिए इन्हें यहाँ कण्ठतालव्यीय कहा गया है।

(iii) इसीप्रकार ओ, औ, ये दोनों स्वरवर्ण भी कण्ठ तथा ओष्ठ इन दोनों के संयुक्त सहयोग से उच्चारण किए जाते हैं। इसीलिए इन्हें यहाँ कण्ठोष्ठ्य कहा गया है।

(iv) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–17)
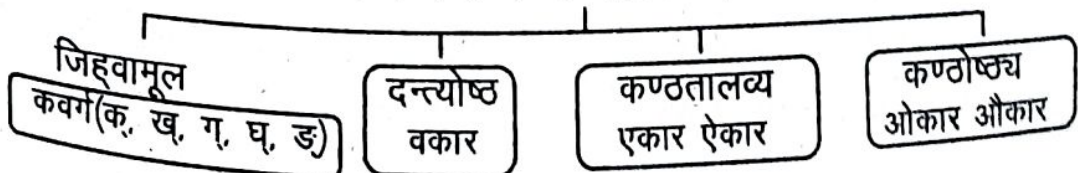
(v) ध्यातव्य है कि कवर्ग के उच्चारण स्थान को यहाँ जिह्वा के मूल में बताया गया है, जबकि सिद्धान्तकौमुदीकार ने इसे **'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः'** कहकर कण्ठस्थानीय कहा है। इसमें कुछ विद्वानों ने किसी प्रकार के दोष की परिकल्पना न करके, इसे उचित ही कहा है, क्योंकि यहाँ कण्ठ पद से समीपवर्ती जिह्वामूल का ही बोध हो रहा है।[1]

टिप्पणी– (i) प्रोक्तः– प्र+√वच्+क्त, कहा गया है।

(ii) स्मृतः– √स्मृ+क्त, स्मरण किया गया है, अथवा कहा गया।

संस्कृत–व्याख्या– ग्रन्थकारः अन्येषाम् वर्णानाम् विषये उच्चारण–स्थानम् कथयति– अत्र कवर्गस्तु रसनामूले कथितोऽस्ति। वकारश्च विद्वद्भिः दन्ताधरस्थानिकः कथितः। एकारैकारौ च कण्ठतालव्यौ भवतः। एवमेव ओकारौकारौ च कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ, अभिहितौ, उक्तौ वा।

अवतरणिका–इसके पश्चात् ग्रन्थकार एकार, ऐकार, ओकार, औकार के मात्राकाल को तथा एङ् तथा ऐच् के आभ्यन्तर प्रयत्न के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

अर्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य एकारैकारयोर्भवेत्।
ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम्।। 19।।

अन्वय– ऐकार–ऐकारयोः ओकार–औकारयोः कण्ठ्यस्य, अर्धमात्रा तु भवेत्, तयोः विवृत–संवृतम् (बोधव्यम्)।। 19।।

अनुवाद– एकार तथा ऐकार में अर्धमात्रा काल तथा ओकार एवं औकार के उच्चारण में कण्ठ का एक मात्रा–काल होता है। इसीप्रकार एङ् और ऐच् प्रत्याहार के वर्णों के विवृत तथा संवृत आभ्यन्तर प्रयत्न समझने चाहिएँ।। 19।।

---

[1] - द्रष्टव्य–पाणिनीयशिक्षा, व्याख्याकार, डॉ.रमाशंकर मिश्र चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2013, पृष्ठ–10।

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने दो बातों का विशेषरूप से कथन किया है। **प्रथम,** एकार तथा ऐकार के उच्चारण में काल सम्बन्धी वैशिष्ट्य का उल्लेख करते हुए, इसे अर्धमात्रा–काल में उच्चारण योग्य बताया है तथा ओकार एवं औकार को कण्ठस्थान से उच्चारण करते हुए, उसे एक मात्राकाल में उच्चारण योग्य कहा है।

इसप्रकार यहाँ उक्त चारों वर्णों के कालविषयक वैशिष्ट्य का कथन किया गया है, जबकि आगे एङ् तथा ऐच् प्रत्याहार में परिगणित वर्णों के विषय में इनके आभ्यन्तर प्रयत्न के सम्बन्ध में कथन करते हुए, इन्हें विवृत तथा संवृत प्रयत्न वाला कहा है। इसप्रकार इस बात को हम यहाँ श्लोक की दूसरी विशेषता के रूप में देख सकते हैं।

विशेष–(i) अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच् इत्यादि चौदह प्रत्याहार सूत्रों अथवा माहेश्वरसूत्रों में 'एङ्' प्रत्याहार के अन्तर्गत एकार तथा ओकार, इन दो वर्णों का ग्रहण होगा तथा 'ऐच्' प्रत्याहार में ऐकार तथा औकार इन दो वर्णों को स्वीकार करेंगे।

(ii) ग्रन्थकार ने यहाँ एकार, ओकार, ऐकार तथा औकार इन चारों वर्णों का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत तथा संवृत कहा है।

(iii) ध्यातव्य है कि बाह्य प्रयत्न में अल्पप्राण तथा महाप्राण आदि का ग्रहण किया जाता है, जबकि आभ्यन्तर प्रयत्न में विवृत एवं संवृत आदि को स्वीकार करते हैं, क्योंकि ये दोनों ही क्रमशः शरीर के बाहर की अर्थात् बाह्य तथा शरीर के अन्दर की अर्थात् आभ्यन्तर क्रियाएँ होती हैं।

(iv) इसी प्रसंग में हमें यह भी समझ लेना उचित होगा कि वर्णों के उच्चारण की दृष्टि से प्रयत्न दो प्रकार का होता है–

1 आभ्यन्तर प्रयत्न 2 बाह्य प्रयत्न।

इनमें भी आभ्यन्तर प्रयत्न के पुनः पाँच भेद होते हैं–

(क) **स्पृष्ट**– 'कादयोमावसाना स्पर्शाः' इत्यादि सूत्र से क से लेकर म तक के सभी वर्णों का 'स्पृष्ट' नामक आभ्यन्तर प्रयत्न होता है।

(ख) **ईषद् स्पृष्ट**– य्, ब्, र्, ल् इन अन्तस्थ वर्णों का ईषद् स्पृष्ट प्रयत्न है।

(ग) **विवृत**– अ से लेकर औ तक के सभी स्वरों का विवृत आभ्यन्तर प्रयत्न है।

(घ) **ईषद् विवृत**– इसीप्रकार श्, ष्, स् तथा ह् इन वर्णों का ईषद् विवृत आभ्यन्तर प्रयत्न होता है।

(ङ) **संवृत**– ह्रस्व अकार का उच्चारण 'संवृत' आभ्यन्तर प्रयत्न के अन्तर्गत आता है।

इसीप्रकार बाह्य प्रयत्नों को भी इसप्रकार समझना चाहिए–

2. **बाह्य प्रयत्न**– बाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकार का होता है–विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित।

आभ्यन्तर प्रयत्न तथा बाह्य प्रयत्नों को इसप्रकार भी समझ सकते हैं– (चित्र–18)

आभ्यन्तर प्रयत्न–

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–19)

मात्रा तथा प्रयत्न

अर्धमात्रा	एक मात्रा	विवृत एवं संवृत
एकार ऐकार (कण्ठतालु)	ओकार औकार(कण्ठौष्ठ्य)	एङ् ऐच्

टिप्पणी– (i) भवेत्– √भू+तिप्, विधिलिंग लकार, प्रथमपुरुष, एक वचन, होना चाहिए।

(ii) संवृतम् – सम्+√वृ+ क्त, संवृतम्, ढका हुआ ।

(iii) विवृतम्– वि+√वृ+ क्त, विवृतम्, खुला हुआ ।

संस्कृत–व्याख्या–एकारऐकारौ इति उभयवर्णयोः, ओकारौकारयोः इति उभयवर्णयोः, कण्ठजन्यस्य अर्धमात्रायाः कालः उच्चारणे भवेत् अर्थात् एकमात्रायाः अर्धभागमित्यर्थः, अथवा एका मात्रा वा सम्पद्येत। तथा तयोः एङैचोः कण्ठ्यस्य विवृतसंवृतजन्यत्वम् बोध्यम्, इति, ।

---

[1] - द्रष्टव्य– लेखककृत सुगम संस्कृत व्याकरण, प्रकाशक, धर्मनीराजना प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृष्ठ– 19–20 ।

अवतरणिका–इसके बाद ग्रन्थकार ह्रस्व अवर्ण (ऽ) तथा दीर्घ आकारादि शेष स्वरों के तथा व्यंजन–वर्णों के संवृत एवं विवृत प्रयत्नों के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम्।
घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः।। 20।।

अन्वय– तु मात्रिकम् संवृतम्, द्विमात्रिकम् विवृतम् ज्ञेयम्, सर्वे घोषाः वा संवृताः, अघोषाः विवृताः स्मृताः।। 20।।

अनुवाद–किन्तु एक मात्रा वाले, ह्रस्व अवर्ण का संवृत प्रयत्न होता है तथा द्विमात्रिक दीर्घ आकार आदि का, दूसरे स्वरों का विवृत प्रयत्न मानना चाहिए। इसीप्रकार व्यंजनों में भी सभी घोष वर्णों का 'संवृत' तथा अघोष वर्णों का 'विवृत' प्रयत्न होता है।। 20।।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेष–(i) ध्यातव्य है कि एक मात्रा वाले, ह्रस्व वर्ण अकार का प्रयोग की अवस्था में संवृत प्रयत्न होता है तथा जितने भी दो मात्रा वाले दीर्घ आकार आदि हैं, उन सभी शेष स्वरों का विवृत आभ्यन्तर प्रयत्न होता है।

(ii) इसके अतिरिक्त जितने भी घोष व्यंजन हैं, उन सभी का 'संवृत' आभ्यन्तर प्रयत्न तथा अघोष व्यंजन वर्णों का 'विवृत' आभ्यन्तर प्रयत्न समझना चाहिए।

(iii) उल्लेखनीय है कि इस विषय में सिद्धान्तकौमुदीकार का मन्तव्य भी कथनीय है। तदनुसार –

खयां यमाः खयः ᳵक ᳶपौ विसर्गः शरः एव च।
एते श्वासानुप्रदाना अघोषांश्च विवृण्वते।।
कण्ठमन्ये तु घोषाः स्युः संवृता नादभागिनः।
अयुग्मा वर्गायमगा यणश्चाल्पासवः स्मृताः।।

अर्थात् खयों के यम तथा खय् प्रत्याहार के वर्ण, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, विसर्ग एवं खर् प्रत्याहार के वर्ण अर्थात् श, ष, स, इन

सभी का विवार, श्वास तथा अघोष प्रयत्न होता है, इसके अलावा जो वर्ण हैं, उन सभी का संवार, नाद तथा घोष प्रयत्न समझना चाहिए।

इसीप्रकार सभी वर्गों के प्रथम, तृतीय, पंचम तथा प्रथम, तृतीय वर्णों के यम और य, व, र, ल ये सभी अल्पप्राण होते हैं। इसके अतिरिक्त सभी वर्ण महाप्राण कहे जाते हैं।

(iv) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–20)

प्रयत्न
- एक मात्रिक संवृत
- द्विमात्रिक विवृत
- घोष संवृत
- अघोष विवृत
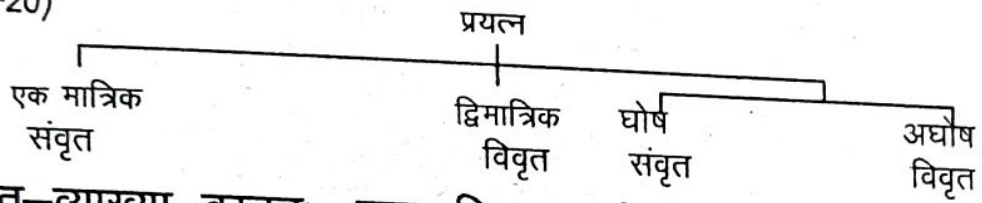
संस्कृत–व्याख्या–वस्तुतः एकमात्रिकम् संवारप्रयत्नम् मात्राद्वय–युक्तम् विवार प्रयत्नम् अवगन्तव्यम्। एवंच सर्वे घोषसंज्ञकवर्णाः वस्तुतः संवृतप्रयत्नकाः भवन्ति। घोषभिन्नाश्च सर्वे वर्णाः विवृतप्रयत्नकाः मन्यन्ते।। 20।।

अवतरणिका– स्वर व्यंजन वर्णों के संवृत एवं विवृत प्रयत्न का उल्लेख करने के बाद, ग्रन्थकार विवार, श्वास तथा अघोष तथा संवार, नाद एवं घोष प्रयत्न के विषय में कथन करते हैं–

स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम्।
तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च।। 21।।

अन्वय– स्वराणाम् उष्मणाम् च विवृतम् करणम् एव स्मृतम्। तेभ्यः अपि एङौ विवृतौ, ताभ्याम् ऐचौ तथैव (भवति)।। 21।।

अनुवाद– स्वरों तथा उष्म वर्ण (श्, ष्, स्, ह्) का आभ्यन्तर प्रयत्न 'विवृत' माना गया है। उन स्वरों में भी एङ् (ए तथा ओ), का विवृततर एवं ऐच् (ऐ और औ) का विवृततम प्रयत्न होता है।।21।।

'चन्द्रिका'–ध्यातव्य है कि प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने विवृत आभ्यन्तर प्रयत्न तथा विवृततर आभ्यन्तर प्रयत्न और विवृततम आभ्यन्तर प्रयत्न के विषय में विशेषरूप से उल्लेख किया है, जिसे हम इसप्रकार समझ सकते हैं–

(क) **विवृत आभ्यन्तर प्रयत्न–** सभी स्वरों तथा उष्म वर्णों (श्, ष्, स्, ह्) का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत होता है।

(ख) **विवृततर आभ्यन्तर प्रयत्न–** इसीप्रकार एङ् प्रत्याहार के ए तथा ओ का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृततर होता है।

(ग) **विवृततम आभ्यन्तर प्रयत्न–** इसके अलावा ऐच् प्रत्याहार के वर्ण ऐ और औ का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृततम कहा गया है।

विशेष–(i) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–21)
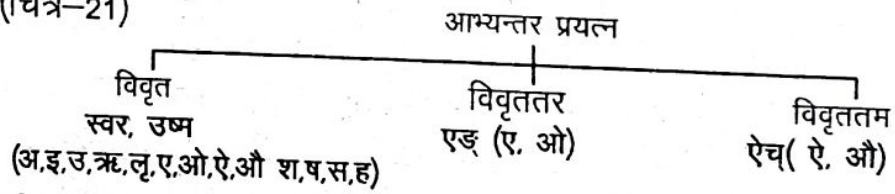
संस्कृत–व्याख्या– स्वराणाम् अर्थात् अच् संज्ञकवर्णानाम् उष्मणाम् च शसषहाणाम् आभ्यन्तरम् प्रयत्नम् विवृताख्यम् भवति। एवमेव तेषु अपि स्वरेषु ये एङ् प्रत्याहारे वर्णौ स्तः, तयोः वर्णयोः आभ्यन्तरम् प्रयत्नम् वस्तुतः विवृततरम् भवति। तथा च ऐच् प्रत्याहारे यौ वर्णौ द्वौ ऐ, औ स्तः, तयोः आभ्यन्तरम् प्रयत्नम् तु तथैव किन्तु विवृततमम् भवेत्।।21।।

अवतरणिका–इसके बाद ग्रन्थकार उच्चारण स्थान की दृष्टि से नासिका से उच्चारण किए जाने वाले वर्णों के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

अनुस्वारयमानांच नासिकास्थानमुच्यते।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः।। 22।।

अन्वय– अनुस्वार–यमानाम् च स्थानम् नासिका उच्यते। अयोग–वाहाः आश्रय–स्थान–भागिनः विज्ञेयाः।। 22।।

अनुवाद–अनुस्वार एवं यम वर्ण (य्, व्, र्, ल्, ङ्, म्, ण्, ञ्, न्,) नासिका कहा गया है, जबकि अयोगवाहों (अनुस्वार, विसर्ग, जिहवा–

मूलीय, उपध्मानीय) का उच्चारण स्थान उनके आश्रयीरूप वर्ण स्थान में भी समझना चाहिए।। 22।।

'चन्द्रिका'–इसके अतिरिक्त अनुस्वार(ं) और यम प्रत्याहार में परिगणित वर्णों का उच्चारण स्थान, वस्तुतः नासिका को कहा गया है, क्योंकि ये सभी वर्ण नासिका के सहयोग से ही बोले जा सकते हैं। यम प्रत्याहार के अन्तर्गत य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न वर्ण आते हैं। इसलिए इनका उच्चारण स्थान यहाँ नासिका कहा गया है।

इसके अलावा अयोगवाह अर्थात् अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय एवं यमरूप वर्णों का उच्चारण स्थान, अपने–अपने मूल स्थान को भी स्वीकार करना होगा। जैसे– ङ् का उच्चारण स्थान यहाँ नासिका अवश्य बताया गया है, किन्तु केवल नासिका से इसका उच्चारण किया जाना सम्भव ही नहीं है, अपितु इसमें इसके आश्रयीभूत स्थान कण्ठ के सहयोग से उच्चारण करना होगा। इसप्रकार यह वर्ण (ङ) वस्तुतः कण्ठ+नासिका इन दो स्थानों के सहयोग से उच्चारण किया जाएगा। इसीप्रकार दूसरे वर्णों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

विशेष–(i) ध्यातव्य है कि यम प्रत्याहार में परिगणित वर्णों में से अन्तस्थों अर्थात् यवरल इन वर्णों का उच्चारण पूर्वकाल में यँ, वँ, रँ तथा लँ के रूप में होता था, किन्तु बाद में इनके अनुस्वारों का प्रयोग होना बन्द हो गया। इसीलिए यहाँ इनका उच्चारण अनुनासिक कहा गया है। वर्तमान में इसे भिन्नरूप में अर्थात् अननुनासिक ही समझना होगा।

(ii) किन्तु ञ, म, ङ, ण, न का उच्चारण तो अनुनासिक ही होता है, फिर भी इनके उच्चारण में इनके अपने मूल स्थान जैसे कण्ठ, ओष्ठ, तालु, मूर्धा आदि को भी मानना होगा, जिसका उल्लेख ग्रन्थकार ने श्लोक के उत्तरार्ध में किया है।

(iii) इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि केवल अनुस्वार का उच्चारण ही नासिका से किया जाता है। जैसे– हंस ।

(iv) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–22)

उच्चारण स्थान

नासिका + तत्तत् स्थानभागिनः

अनुस्वार, (यम्–यँ, वँ, रँ, लँ, ञ, म, ङ, ण, न) अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वा. उपध्मा. यम्

टिप्पणी– (i) उच्यते–√ब्रू+ प्र.पु, ए.व., कर्मवाच्य, कहा जाता है।

संस्कृत–व्याख्या– अनुस्वारस्य यमानाम् च उच्चारणस्थानम् नासिका कथ्यते। वाहयन्ति कार्यम् प्रयोगम् वा निर्वाहयन्ति, इति वाहाः। न विद्यते योगः, वर्गसमाम्यनायेषु पाठो येषाम् ते अयोगाः, ते च वाहाः ये सन्ति अयोगवाहाः, ते अनुस्वार–विसर्ग–जिह्वामूलीय–उपध्मानीय–यमस्वरूपाश्च आश्रयस्थानभागिनः स्वराश्रितस्थानकाः, अवगन्तव्याः, इति।। 22।।

अवतरणिका–तत्पश्चात् ग्रन्थकार अन्तस्थ एवं उष्म परे होने पर अनुस्वार के उच्चारण के विषय में कहते हैं कि–

अलाबुवीणानिर्घोषो दन्तमूल्यः स्वरानुगः।
अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च।। 23।।

अन्वय–अलाबु–वीणा–निर्घोषः दन्तमूल्यः, स्वरानुगः अनुस्वारः तु ह्रोः शषसेषु च नित्यम् कर्तव्यम्।। 23।।

अनुवाद– तुम्बीफल, वीणा के समान स्वर वाले, दन्त के मूल में उत्पन्न होने वाले, स्वर का अनुसरण करने वाले, अनुस्वार का हकार, रेफ और श,ष,स ये वर्ण बाद में होने पर, हमेशा ही समुच्चारण करना चाहिए।। 23।।

'चन्द्रिका'–तुम्बीफल के द्वारा निर्मित वीणा के समान स्वर से युक्त, दन्त के मूल भाग से उत्पन्न होने वाले, स्वरों का अनुसरण करने वाले, अनुस्वार का हकार, रेफ और श, ष, स इन वर्णों के बाद में होने पर हमेशा ही इनका ठीक प्रकार से उच्चारण करना चाहिए अर्थात् कोई भी व्यक्ति सावधानी के साथ उच्चारण करे।

विशेष–(i) तुम्बीफल लौकी को कहते हैं, इसके द्वारा वाद्ययन्त्र वीणा का निर्माण किया जाता है। उसी से निकलने वाले स्वर की ओर ग्रन्थकार ने यहाँ संकेत किया है।

(ii) श्लोक में प्रयुक्त ह्रोः से अभिप्राय हकार तथा रेफ वर्णों से ग्रहण करना चाहिए।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–23)

उच्चारण के विषय में विशेष सावधानी

तुम्बीफल वीणा के समान स्वरयुक्त, दन्तमूल में उत्पन्न होने वाले, स्वर का अनुसरण करने वाले, → अनुस्वार का → हकार, रेफ तथा श,ष,स परे होने पर हमेशा ही सावधानीपूर्वक → उच्चारण करना चाहिए
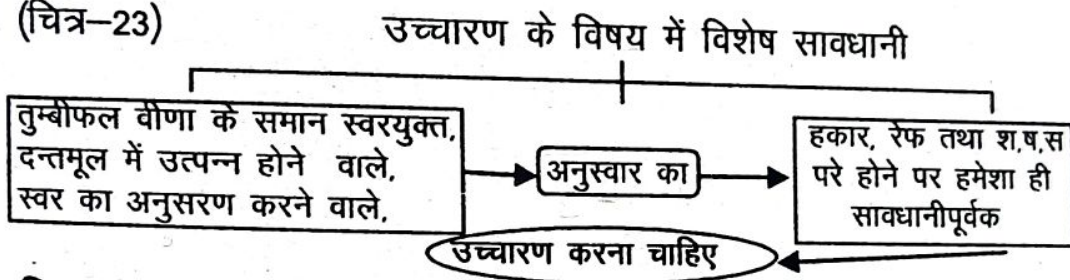
टिप्पणी– (i)कर्तव्यः– √कृ+तव्यत्, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एक वचन, करना चाहिए।

संस्कृत–व्याख्या–अलाबुनिर्मितायाः वीणायाः निर्घोषः इव निर्घोषः यस्य सः, अलाबुवीणानिर्घोषः, इति अर्थात् तुम्बिविपंचिस्वानः, दन्तानाम् मलम् तस्मिन्, दन्तमूले भवः, स्वरान् अनुगच्छन्ति, इति। अचः परः अनुस्वारः तु अर्थात् एवम् भूतः अनुस्वारः, हकाररेफयोः, परयोः, शकार–षकार–सकार–परेषु च नित्यम् सदैव सम्यक्रूपेण सावधानीपूर्वकम् उच्चारयितव्यः।।23।।

अवतरणिका–इसीप्रकार एक अन्य स्थिति में सावधानी का उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

अनुस्वारे विवृत्यां तु विरामे चाक्षरद्वये।
द्विरोष्ठ्यो तु विगृह्णीयाद्यत्रौकारवकारयोः।। 24।।

अन्वय– अनुस्वारे विवृत्याम् विरामे अक्षरद्वये यत्र औकारवकारयोः तु द्विः ओष्ठ्यौ विगृह्णीयात्।। 24।।

अनुवाद–**अनुस्वार, विवृत्ति, विराम, संयुक्ताक्षर, बाद में होने पर औकार एवं वकार के उच्चारण के समान, स्वरों के उच्चारण में ओष्ठों को दो बार परस्पर अलग करना चाहिए।। 24।।**

'चन्द्रिका'–ग्रन्थकार का अभिप्राय है कि यदि बाद में स्वर वर्ण के बाद में अनुस्वार, विवृत्ति, विराम या फिर संयुक्त अक्षर विद्यमान हो, तो औकार एवं वकार के उच्चारण के समान ही स्वरों के उच्चारण में, अपने ओष्ठों को दो बार अलग करना चाहिए, तभी शुद्ध उच्चारण किया जाना सम्भव हो सकता है।

विशेष–(i) श्लोक में प्रयुक्त 'अक्षरद्वये' से अभिप्राय संयुक्त अक्षर से ग्रहण करना चाहिए।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–24) स्वरों के उच्चारण के सम्बन्ध में विशेष सावधानी(2)
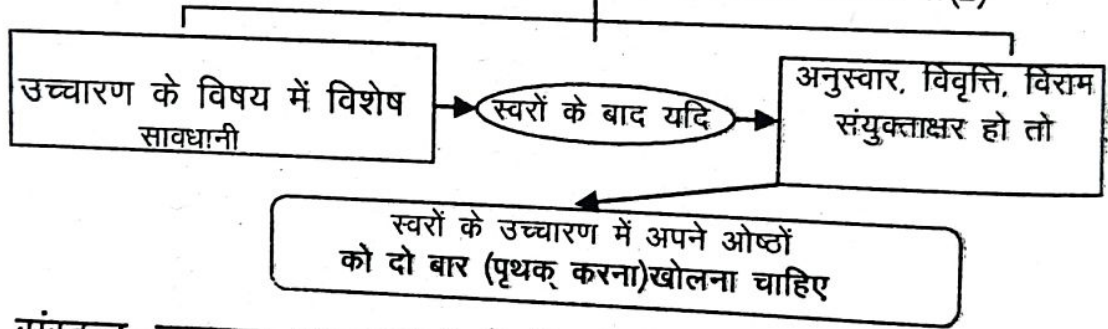
संस्कृत–व्याख्या–अनुस्वारयुक्ते विवृत्तिपरके, विरामपरके, संयुक्त–अक्षरद्वये यत्र ओकारवकारयोः इव द्विः अधरौ पृथक् विदध्यात्।।24।।

अवतरणिका–इसी प्रसंग में यहाँ व्याघ्री तथा मार्जारी का उदाहरण देते हुए ग्रन्थकार अक्षरों के उच्चारण को न अधिक शिथिलतापूर्वक और न ही अधिक आघातपूर्वक करने का निर्देश प्रदान करते हुए कहते हैं कि–

व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभ्यां न च पीड़येत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद् वर्णान्प्रयोजयेत्।। 25।।

अन्वय–यथा व्याघ्री पतनभेदाभ्याम् भीता दंष्ट्राभ्याम् पुत्रान् हरेत्। न च (तम्) पीडयेत्, तद्वत् (सदैव सुधीजनः) वर्णान् प्रयोजयेत्।। 25।।

अनुवाद–जिसप्रकार व्याघ्र की पत्नी अथवा उसके समान मुख वाली मार्जारी गिरकर हानि होने के भय से डरी होकर, अपने दाँतों से अपने पुत्रों को एक स्थान से, दूसरे स्थान पर ले जाती है। ठीक

उसीप्रकार सुधीजन को वर्णों का उच्चारण, न तो अधिक शिथिलता-पूर्वक और न ही अधिक आघात के साथ करना चाहिए।। 25।।

'चन्द्रिका'– भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) बिल्ली तथा व्याघ्री की विशेषता है कि वह अपने सद्योत्पन्न बच्चों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए, अपने तीक्ष्ण दाँतों को अधिक नहीं दबाती है और इतना कम भी नहीं दबाती है, जिससे उन्हें पृथ्वी पर गिरने से हानि पहुँच सके।

(ii) प्रस्तुत श्लोक से ग्रन्थकार का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान (विशेषरूप से बिल्ली तथा व्याघ्री के विषय में) अभिव्यक्त हुआ है। यद्यपि कुतिया भी अपने सद्योत्पन्न बच्चों को इसप्रकार सावधानीपूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–25)
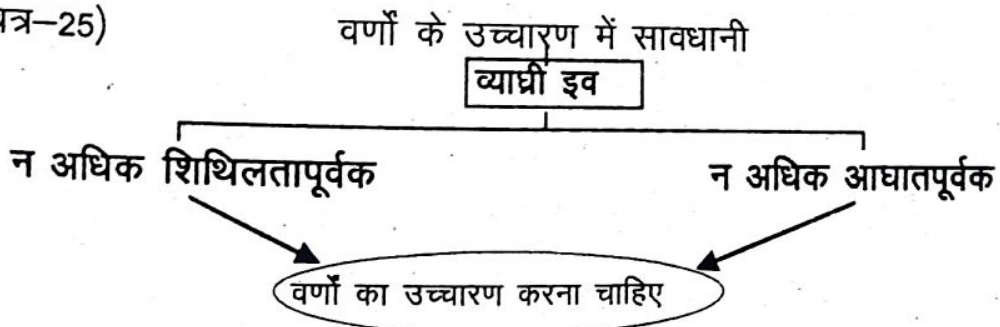
टिप्पणी– (i) हरेत्– √हृ+तिप्, विधिलिंग, प्रथम पुरुष, एक वचन, हरण करना।

(ii) पीडयेत्– √पीड्, विधिलिंग, प्रथम पुरुष, एक वचन, दबाना।

(iii) प्रयोजयेत्– प्र+√युज्+तिप्, विधिलिंग, प्रथम पुरुष, एक वचन, प्रयोग करना चाहिए।

संस्कृत–व्याख्या–ग्रन्थकारः वर्णानाम् उच्चारणविषये उदाहरण-पूर्वकम् कथयति यत्–यथा व्याघ्री शार्दूलदयिता वा ध्वंसभेदाभ्याम् भययुक्ता सति, स्वविशालदशनाभ्याम् स्वपुत्रान् नयेत्, एकस्मात् स्थानात् अन्ये स्थाने, तदा सा नैव स्वदन्तान् अधिकम् निपीडयति, नैव च एतान् शिथिलयति, तथैव यः सुधीजनोऽस्ति, सोऽपि वर्णानाम् उच्चारणविषये न

अधिकम् शिथिलयति, नैव वा आघातपूर्वकम् अधिकम् उच्चारयति, अपितु सम्यक्रूपेण नियमानुसारेनैव उच्चारणम् करोति।। 25।।

अवतरणिका– वर्णों के उच्चारण के विषय में, व्याघ्री का अपने शिशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने विषयक उदाहरण देने के बाद, प्रस्तुत श्लोक में रँग के उच्चारण विषयक उदाहरण को देकर, उसके उच्चारण को अनुनासिकत्व रूप में समझाते हुए कहते हैं कि–

यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रे इत्यभिभाषते।
एवं रंगाः प्रयोक्तव्याः खे अराँ इव खेदया।। 26।।

अन्वय– यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रँ इति अभिभाषते, एवम् रंगाः प्रयोक्तव्याः, (यथा वेदे) खे अराँ इव खेदया' (इति उपलभ्यते)।। 26।।

अनुवाद–जिसप्रकार सौराष्ट्रदेश में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ, निरनु–नासिक शब्द तक्र को तक्रँ अनुनासिक करके उच्चारण करती हैं, वैसे ही व्यक्ति को 'रंग' पद का उच्चारण करना चाहिए। जैसा कि वेद में भी कहा गया है–'खे अराँ इव खेदया' ।। 26।।

'चन्द्रिका'– सौराष्ट्रीय महिलाओं का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि उनके द्वारा अनुनासिक न होते हुए भी तक्र पद का उच्चारण 'तक्रँ' किया जाता है, ठीक वैसे ही हमें 'रंग' पद का उच्चारण करना चाहिए। अपने कथ्य की पुष्टि में ग्रन्थकार ने वेद वाक्य को उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया है। जैसे–

'खे अराँ इव खेदया' इत्यादि उदाहरण में अराँ पद का अननुनासिक होते हुए भी अनुनासिक उच्चारण किया गया है।

विशेष–(i) लोमश–शिक्षा में रंग के उच्चारण को दो भेदों वाला कहा है– तदनुसार, **रंगस्तु द्विविधो ज्ञेयः, स्वरपरो व्यंजनपरः,** इति।

(ii) नकार तथा मकार के रुत्व के बाद में, जो अनुनासिकत्व का विधान किया जाता हैं, वही रंग है। लोमश–शिक्षा में इसके उपरोक्त दो भेद किए गए हैं।

टिप्पणी– (i) अभिभाषते–अभि+ √भाष् (भाषणे)+ तिप्, आत्मनेपदी, प्रथम पुरुष, एक वचन, कहा जाता है।

(ii) प्रयोक्तव्याः– प्र+ √युज्+तव्यत्, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन, प्रयोग करने चाहिएँ।

संस्कृत–व्याख्या–यथा सौराष्ट्रदेशोत्पन्ना वनिता तक्रँ इति निरनुनासिकम् अपि शब्दम् सानुनासिकम् अभिभाषते वदति वा। अनेनैव प्रकारेण रंगाः वर्णविशेषाः रंजयति पूर्ववर्णम्, इति रंगः वर्णविशेषः। नकारे रुत्वे यः अनुनासिकः विधीयते, सः वै रंगः, समुच्चारयितव्याः। विषयेऽस्मिन् वेदे उदाहरणम् अस्ति– खे अराँ इव खेदया, इति।। 26।।

अवतरणिका– इसके पश्चात् रंग वर्ण के उच्चारण के सम्बन्ध में दिशा–निर्देश प्रदान करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

रंगवर्णं प्रयुंजीरन्नो ग्रसेत्पूर्वमक्षरम्।
दीर्घस्वरं प्रयुंजीयात्पश्चान्नासिक्यमाचरेत्।। 27।।

अन्वय– रंगवर्णम् (तथा) प्रयुंजीरन्, (यथा) पूर्वम् अक्षरम् न ग्रसेत्। दीर्घस्वरम् प्रयुंजीरन्, पश्चात् नासिक्यम् आचरेत्।। 27।।

अनुवाद–रंग वर्ण का इसप्रकार उच्चारण करना चाहिए, जिससे पूर्व में स्थित वर्ण का संस्पर्श (ग्रसन) न हो, इसके बाद ही दीर्घ स्वर का उच्चारण करे और उसके बाद ही अनुनासिक वर्ण को बोलना चाहिए।। 27।।

'चन्द्रिका'–उपर्युक्त श्लोक में ग्रन्थकार ने रंग वर्ण के उच्चारण के सम्बन्ध में कथन किया है; तदनुसार– सुधीजन को रंग वर्ण के उच्चारण को इसप्रकार करना चाहिए, जिससे उससे पूर्व में प्रयुक्त वर्ण का ग्रसन न हो अर्थात् उसका 'संस्पर्श' न हो। इसके बाद ही दीर्घ स्वर का उच्चारण करना उचित रहता है। पुनः इसी विषय में कहते हैं कि तत्पश्चात् ही अनुनासिक वर्ण का उच्चारण करना चाहिए।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में रंग वर्ण के उच्चारण के विषय में प्रमुखरूप से तीन बातों का कथन किया गया है–

प्रथम, रंग वर्ण के उच्चारण में उससे पहले प्रयुक्त होने वाले वर्ण का संस्पर्शन अर्थात् ग्रसन नहीं होना चाहिए।

द्वितीय, इसके बाद दीर्घ स्वर का उच्चारण करना चाहिए।

तृतीय, उसके पश्चात् ही अनुनासिक वर्ण को बोलना चाहिए।

(ii) भाषा की सरलता दर्शनीय एवं प्रशंसनीय है।

टिप्पणी–(i) प्रयुंजीरन्–प्र+√युज्+झि, आत्मनेपदी, प्रथम पुरुष, बहुवचन, प्रयोग करने चाहिएँ।

(ii) ग्रसेत्–√ग्रस्+तिप्, विधिलिंग, प्रथम पुरुष, एक वचन, ग्रसन करे, ग्रास (संस्पर्श) होवे।

(iii) आचरेत्–आ+√चर्+ तिप्, विधिलिंग, प्रथम पुरुष, एक वचन, आचरण करे।

संस्कृत–व्याख्या–रंगनामानम् अक्षरम् तेन प्रकारेण प्रयुंजीरन् समुच्चारणम् कुर्यात्, येन तस्मात् पूर्वम् अक्षरम् वर्णम् वा नैव संस्पृशेत्, द्विमात्रिकम् प्रयोगम् कुर्यात्, तद् अनन्तरम् च अनुनासिकम् वर्णम् समुच्चारयेत्, विषयेऽस्मिन् पर्याप्तसावधानी अवश्यमेव करणीया आचरणीया वा।। 27।।

अवतरणिका– इसी क्रम में ग्रन्थकार आगे 'रंग' पद को दो मात्रा वाला बताते हुए, उन मात्राओं के उच्चारण स्थान के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

हृदये चैकमात्रस्त्वर्द्धमात्रस्तु मूर्द्धनि।
नासिकायां तथार्द्धं च रंगस्यैवं द्विमात्रता।। 28।।

अन्वय–एकमात्रः तु हृदये, अर्द्धमात्रः तु मूर्द्धनि, तथा अर्द्धम् नासिकायाम्, एवम् रंगस्य द्विमात्रता (भवति)।। 28।।

अनुवाद–रंग पद की एक मात्रा हृदय में, आधी मात्रा मूर्धा में, तथा आधी मात्रा नासिका में उच्चारण की जाती है। इसप्रकार वस्तुतः 'रंग' पद की कुल मिलाकर दो मात्राएँ होती हैं।। 28।।

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने 'रंग' पद को दो मात्रा काल का बताते हुए, इसकी एक मात्रा हृदय में तथा शेष आधी मात्रा का उच्चारण मूर्धा में तथा अवशिष्ट आधी मात्रा का उच्चारण नासिका से करने की बात का कथन किया है, जिसे हम चित्र के माध्यम से इसप्रकार समझ सकते हैं–

(चित्र–26) दो मात्रा काल वाले रंग पद का उच्चारण

एक मात्रा हृदय में वक्ष	आधी मात्रा मूर्धा में उत्तमांग	आधी मात्रा नासिका में
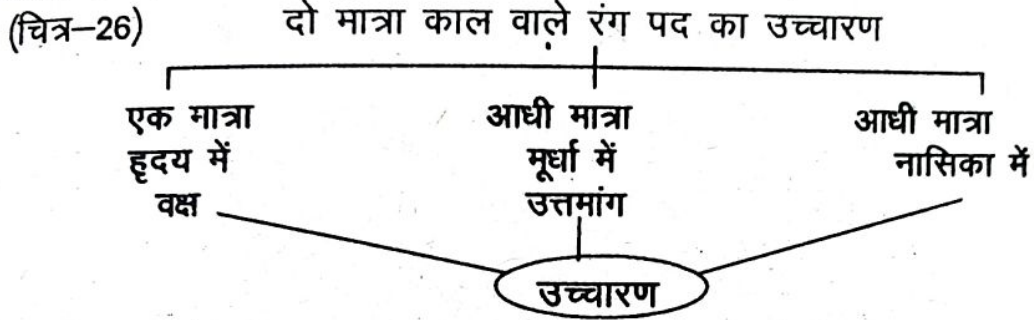
उच्चारण

संस्कृत–व्याख्या– रंगस्य पदस्य एकमात्रा तु हृदये वक्षसि वा उच्चारणम् क्रियते। अर्द्धमात्रः तु उत्तमांगे अर्थात् मूर्द्धनि, अनेन खलु प्रकारेण अर्द्धमात्रा वै नासिकायाम् घोणायाम् वा उच्चारणम् क्रियते। एवम् रंगः पदस्तु द्विमात्राकालयुक्तो भवति।। 28।।

अवतरणिका–तत्पश्चात् ग्रन्थकार हृद्प्रदेश से ऊर्ध्व प्रदेश तक स्थिति को प्राप्त हुए, 'रंग' पद की ध्वनि के विषय में पुनः सोदाहरण उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

हृदयादुत्करे तिष्ठन् कांस्येन समनुस्वरम्।
मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाँ इति निदर्शनम्।। 29।।

अन्वय–हृदयात् उत्करे तिष्ठन्, कांस्येन समनुस्वरन् मार्दवम् च द्विमात्रम् च समुच्चारयेत्, तत्र जघन्वाँ, इति निर्दशनम्।। 29।।

अनुवाद– हृदय से लेकर ऊर्ध्वप्रदेश पर्यन्त स्थिति को प्राप्त होने वाले 'रंग' पद की ध्वनि, वस्तुतः कांस्य–पात्र की ध्वनि के स्वर के समान, मृदु एवं दीर्घरूप में उच्चारण की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में 'जघ्नवाँ' पद को उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।। 29।

'चन्द्रिका'–भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–27)

रंग पद की ध्वनि

- हृदय से ऊर्ध्व प्रदेश पर्यन्त स्थिति
- कांस्य पात्र की ध्वनि के स्वर के समान
- मृदु तथा दीर्घ रूप में उच्चरित

टिप्पणी– (i) तिष्ठन्– √स्था (तिष्ठ आदेश) +शतृ, प्रथमा विभक्ति, एक वचन, स्थिति को प्राप्त होते हुए।

(ii) समनुस्मरन्– सम्+अनु+ √स्मृ+शतृ, प्र.वि, ए.व, भलीप्रकार सादृश्य को प्राप्त होते हुए।

संस्कृत–व्याख्या– हृदयात् अर्थात् वक्षप्रदेशात् ऊर्ध्वभागे स्थितिम् अधिगच्छन् रंगः, इति शब्दः, कांस्यपात्रनिनादसादृश्यम् प्राप्नुवन्, अतीव मृदुत्वम् दीर्घत्वम् च समुच्चारयेत्, इति। विषयेऽस्मिन् उदाहरणम् अस्ति यत्– 'जघन्वाँ' एवमेव रंगस्यापि उच्चारणम् कुर्यात्।। 29।।

अवतरणिका–इसके बाद ग्रन्थकार 'कम्प–स्वर' के उच्चारण के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

मध्ये तु कम्पयेत्कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत्।
सरंगं कम्पयेत्कम्पं रथीवेति निदर्शनम्।। 30।।

अन्वय–कम्पम् तु मध्ये कम्पयेत्। उभौ पार्श्वौ समौ भवेत्। कम्पम् सरंगम् कम्पयेत्। रथीव, इति निदर्शनम्।। 30।।

अनुवाद– 'कम्प–स्वर' का उच्चारण तो बीच में कम्पयुक्त करना चाहिए। इस विषय में ध्यातव्य है कि स्वर के प्रारम्भ तथा समाप्ति दोनों ही समानरूप से स्थित रहें। इसीप्रकार रंग के साथ भी 'कम्प–स्वर' का उच्चारण करना चाहिए। इस सम्बन्ध में 'रथीव' को उदाहरणरूप में देखा जा सकता है।। 30।।

'चन्द्रिका'–उपर्युक्त श्लोक में ग्रन्थकार ने चार मुख्य बातों का कथन किया है–

(क) 'कम्प–स्वर' का उच्चारण हमेशा ही मध्य में कम्पयुक्त करना चाहिए।

(ख) इससे स्वर के आरम्भ तथा समाप्ति में, ये दोनों ही सम्यक्रूप से स्थित रहती हैं।

(ग) इसीप्रकार 'रंग' पद के साथ 'कम्प–स्वर' का उच्चारण अवश्य करना चाहिए।

(घ) इस विषय में 'रथीव' को उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

विशेष–(i) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–28)
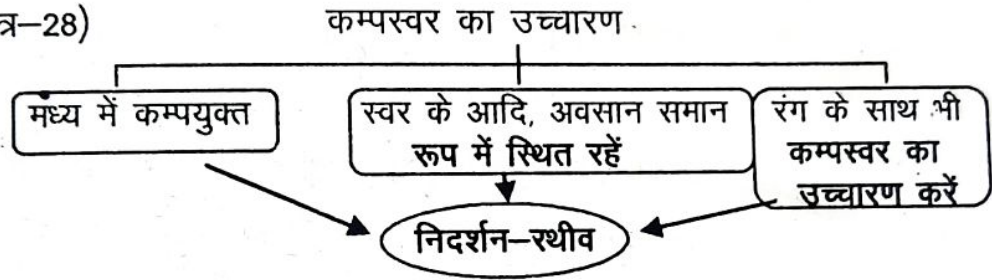
टिप्पणी–(i)कम्पयेत्– √कम्प्+तिप्, विधिलिंग लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, कम्प से युक्त उच्चारण करना चाहिए।

(ii) भवेत्– √भू+तिप्, विधिलिंग लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, होना चाहिए।

संस्कृत–व्याख्या–कम्पम् स्वरम् तु स्वरस्य उच्चारणसमये मध्ये काले कम्पयुक्तम् समुच्चारयेत्। उभौ पार्श्वौ अर्थात् स्वरादिचरमभागौ समानौ सम्पद्येत्। कम्पम् स्वरम् रंगसहितम् उच्चारयेत्। विषयेऽस्मिन् रथीव पदः उदाहरणम् विद्यते, उच्चारणविषयेऽस्य खलु अनुकरणम् कुर्यात्।। 30।।

अवतरणिका–इसके पश्चात् ग्रन्थकार वर्णों के सम्यक् प्रयोग से प्राप्त होने वाले, फल का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीड़िता।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते।। 31।।

अन्वय–एवम् वर्णाः प्रयोक्तव्याः, न अव्यक्ताः, न च पीड़िताः, सम्यक् वर्णप्रयोगेन ब्रह्मलोके महीयते।। 31।।

अनुवाद–इसप्रकार वर्णों का उच्चारण इसप्रकार करना चाहिए, जिससे वे न तो अस्पष्ट रहें और न ही पीड़ित होवें। भलीप्रकार वर्णों के प्रयोग द्वारा व्यक्ति 'ब्रह्मलोक' में पूजित होता है।। 31 ।।

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत ग्रन्थ में बताए गए, नियमों का पालन करते हुए, जो व्यक्ति वर्णों का पूर्णतया स्पष्ट तथा उन्हें पीडित न करते हुए, ठीक– ठीक उच्चारण करता है, इसप्रकार से वर्णों का प्रयोग करने पर, वह व्यक्ति ब्रह्मलोक में भी महिमावान् होता है अर्थात् सम्मान को प्राप्त करता है।।31।।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने वर्णों के स्पष्ट तथा उनके मधुररूप में, नियमानुसार उच्चारण करने की फलश्रुति का कथन किया है।

(ii) दूसरे शब्दों में, वर्णों के सम्यक् प्रयोग से व्यक्ति को 'मोक्ष' की प्राप्ति होना भी सम्भव है।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रदर्शित कर सकते हैं–

(चित्र–29)

वर्णों के सम्यक् प्रयोग की फलश्रुति

वर्णों का उच्चारण → सुस्पष्ट हो → कर्कश न हो

ऐसा उच्चारण करने से व्यक्ति ब्रह्मलोक में भी पूजित होता है
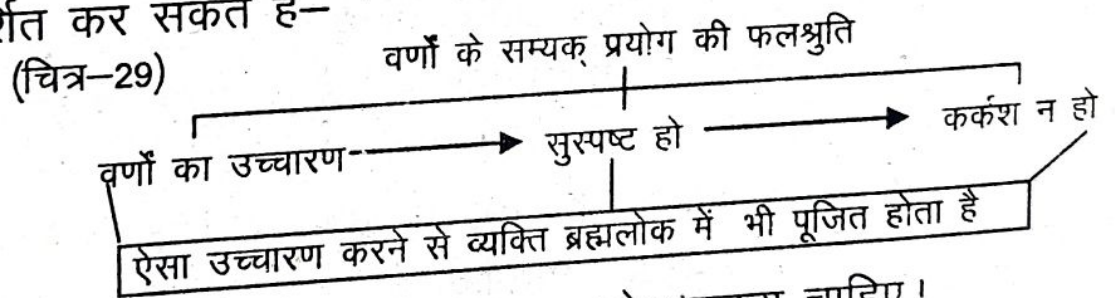
टिप्पणी– (i) प्र+ √युज्+तव्यत्, प्रयोग करना चाहिए।

संस्कृत–व्याख्या–अनेन प्रकार अक्षराणि सदैव जनैः सम्यक्रूपेण उच्चारयितव्यानि, वस्तुतः समुच्चारणे ते वर्णाः नैव अस्पष्टाः भवेयुः, न च पीड़िताः अर्थात् रुक्षाः स्युः। अतः साधुप्रकारेण खलु अक्षरसमुच्चारणेन ते जनाः सदैव स्रष्टुः भुवने अपि सम्पूज्यन्ते।। 31 ।।

अवतरणिका–इसके बाद अधम पाठक की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

गीत शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः।। 32 ।।

अन्वय–गीती, शीघ्री, शिरःकम्पी, लिखित–पाठकः तथा अनर्थज्ञः, अल्पकण्ठः, च एते षट् अधमाः पाठकाः (सन्ति)।। 32 ।।

अनुवाद– गानपूर्वक, शीघ्रतापूर्वक, सिर को हिलाते हुए, लिखे हुए को पढ़ने वाला तथा अर्थ को न जानने वाला और अभ्यास न करने वाला, ये छः अधम पाठक होते हैं।। 32।।

'चन्द्रिका'– जो वेदपाठ करने वाले लोग गाकर, जल्दीबाजी में, अपने सिर को हिलाते हुए, लिखे हुए को तथा बिना उसके अर्थ को समझे, अभ्यास के अभाव में ही पढ़ते हैं, वे सभी वस्तुतः 'अधम' पाठक की श्रेणी में गिने गए हैं।। 32।।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने अधम पाठक के छः दुर्गुणों का उल्लेख किया है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–30) अधम पाठक के छः अवगुण

गीती | शीघ्री, | शिरःकम्पी | लिखित–पाठकः | अनर्थज्ञः | अल्पकण्ठः

संस्कृत–व्याख्या–गानशीलः, वेगपूर्वकम् पठनशीलः, उत्तमांग–प्रकम्पकः, पत्रेषु लिखित्वा पाठकः, तेन वै प्रकारेण अर्थज्ञानविरहितः, अनभ्यस्तकण्ठः, इमे षट्संख्यकाः पाठकेषु अधमाः सन्ति अर्थात् तेषाम् गणना पाठकेषु निम्नतमरूपेण भवति, क्रियते वा, इति।। 32।।

अवतरणिका– अधम पाठक के दुर्गुणों का कथन करने के बाद, ग्रन्थकार श्रेष्ठ पाठक के गुणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः।। 33।।

अन्वय–माधुर्यम्, अक्षर–व्यक्तिः, पदच्छेदः, तु सुस्वरः, धैर्यम्, लय–समर्थम् च एते षड् पाठकाः गुणाः (सन्ति)।। 33।।

अनुवाद–मधुरता, वर्णों की स्पष्टता, पदों का विभाग, मधुर स्वर, धैर्य और लय से युक्त होना, ये छः वस्तुतः श्रेष्ठ पाठकों के गुण हैं।। 33।।

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने उत्तम पाठक के छः गुणों का उल्लेख इसप्रकार किया है। तदनुसार– श्रेष्ठ पाठक सदा ही

मधुरतापूर्वक वर्णों का उच्चारण करता है। उसके उच्चारण में वर्णों में स्पष्टता विद्यमान रहती है। वह पदों का विभाग करके पाठ करता है, उसके स्वर में माधुर्य विद्यमान होता है। उच्चारण करते हुए, वह धैर्य का अवलम्ब लेता है, किसी प्रकार की जल्दीबाजी नहीं करता है तथा वह मन्त्रों को वहाँ प्रयुक्त छन्दों के नियमों के अनुसार लयबद्ध उच्चारण करता है।। 33।।

विशेष–(i) जिसप्रकार अधम पाठकों के छः दुर्गुणों का ग्रन्थकार ने पहले उल्लेख किया था, उसीप्रकार यहाँ उन्होंने श्रेष्ठ पाठकों के भी छः ही गुणों को कथन किया है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को हम इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–31)

श्रेष्ठ पाठक के छः गुण

माधुर्यम् | अक्षर–व्यक्तिः | पदच्छेदः | सुस्वरः | धैर्यम् | लयसामर्थ्यम्

संस्कृत–व्याख्या–ग्रन्थकारः कथयति यत्– श्रेष्ठपाठकस्य वाण्याम् मधुरत्वम्, सुस्पष्टोच्चारणम् भवति। सः पदेषु विभागम् कृत्वा पठति। तस्य स्वरः शोभनो भवति। सः खलु धैर्यपूर्वम् उच्चारणम् करोति। सहैव तस्य उच्चारणम् पदानाम् लयबद्धो भवति। एते विद्वद्भिः श्रेष्ठ–पाठकानाम् षड् प्रकारकाः गुणाः कथ्यन्ते।। 33।।

अवतरणिका–इसप्रकार श्रेष्ठ पाठक के छः गुणों का उल्लेख करने के बाद ग्रन्थकार उच्चारण करते हुए, किन–किन बातों का विशेषरूप से ध्यान रखना चाहिए, इस विषय में कथन करते हैं–

शंकितं भीतिमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
काकस्वरं शिरसिगं तथा स्थानविवर्जितम्।। 34।।
उपांशुदष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम्।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम् 35

अन्वय– शंकितम्, भीतिम्, उद्घुष्टम्, अव्यक्तम्, अनुनासिकम्, काकस्वरम्, शिरसिगम्, स्थानविवर्जितम्, त्वरितम्, उपांशु–दष्टम् तथा

निरस्तम्, विलम्बितम्, गद्गदितम्, प्रगीतम्, निष्पीड़ितम्, ग्रस्तपदाक्षरम्, दीनम्, तथा सानुनास्यम् च न वदेत्।। 34–35।।

अनुवाद–संशय से युक्त, भयपूर्वक, उच्चस्वर से युक्त, अस्पष्ट, अनुनासिकता से युक्त, कौए की तरह कर्कश स्वर से युक्त, उत्तम अंग को पीड़ित करने वाला, स्थान से भ्रष्ट, शीघ्रता से युक्त, अत्यधिक मन्द स्वर से युक्त, अत्यन्त देर से उच्चारण किया गया, गद्गदकण्ठ से युक्त, गानपूर्वक, निष्पीड़ित, बीच–बीच में वर्णों को व्यक्त किए बिना ही, दीनतापूर्वक तथा निरनुनासिक को भी सानुनासिक करके वर्णों का उच्चारण कभी नहीं करना चाहिए।। 34–35 ।।

'चन्द्रिका'–भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष– (i) उपर्युक्त दोनों श्लोकों में पदों के उच्चारण के विषय में ग्रन्थकार की सूक्ष्मेक्षिका प्रदर्शित हुई है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक के अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रदर्शित कर सकते हैं–

(चित्र–32)

वर्णों के उच्चारण के समय सावधानियाँ

शंकितम् | भीतिम् | उद्घुष्टम् | अव्यक्तम् | अनुनासिकम् | काकस्वरम् | शिरसिगम् | स्थानविवर्जितम् | त्वरितम्

उपांशुदष्टम् निरस्तम् विलम्बितम् गद्गदितम् प्रगीतम् निष्पीड़ितम् ग्रस्तपदाक्षरम्

दीनम् सानुनास्यम्

न वदेत्

संस्कृत–व्याख्या–संशययुतम्, भययुक्तम्, प्रकृष्टध्वनिसहितम्, स्पष्टतारहितम्, अनुनासिकयुतम्, वायसस्वरम् इव कर्कशम्, उत्तमांग–पीड़ितम्, स्वाभाविकस्थानविहीनम्, अत्यधिकम् मन्दस्वरयुक्तम्, अतीव–तीव्रम्, निष्ठुरम्, विलम्बेन उच्चारितम्, श्लथकण्ठम्, गानपूर्वकम्, किंचित् निष्पीड्य सम्भाषितम्, यत्र तत्र वर्णरहितम्, दीनतापूर्वकम्, एवंच सानुनास्यम्, अर्थात् निरनुनासिकम् अपि सानुनासिकम् एवम् प्रकारेण नैव कदापि समुच्चारयेत्, कोऽपि सुधीजनः।। 34–35।।

अवतरणिका– इसके अनन्तर ग्रन्थकार प्रातःकालिक सवन तथा माध्यन्दिन सवन में मन्त्रों के उच्चारण की विधि का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन।
मध्यन्दिनं कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसङ्कूजितसन्निभेन।

अन्वय– प्रातः उरःस्थितेन शार्दूलरुत–उपमेन, मध्यन्दिने चक्राह्व–सङ्कूजित–सन्निभेन कण्ठगतेन च एव स्वरेण नित्यम् पठेत्।। 36।।

अनुवाद–प्रातःकाल के यागकर्म में, हृदय में भलीप्रकार स्थित, सिंह के स्वर के समान तथा माध्यन्दिन याग–कर्म में कण्ठ में स्थित चक्रवाक के स्वर के समान ध्वनि से, नित्य ही वर्णों का उच्चारण करना चाहिए।। 36।।

'चन्द्रिका'–भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) ग्रन्थकार का अभिप्राय है कि प्रातःकालिक तथा माध्यन्दिन सवनकर्मों द्वारा, यदि हम उपयुक्त फलों की प्राप्ति करना चाहते हैं, तो हमें उपर्युक्त विधि एवं स्वर के अनुसार ही मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–33)

वर्णों के उच्चारण प्रकार

- **प्रातःसवन में** — **हृदय में स्थित सिंह के स्वर के समान**
- **माध्यन्दिन यागकर्म में** — **चक्रवाक स्वरसदृश ध्वनि से**

टिप्पणी– (i) पठेत्– √पठ् + तिप्, विधिलिंग, प्रथमपुरुष, एक वचन, पढ़ना चाहिए।

संस्कृत–व्याख्या–प्रातःकाले वक्षसंस्थितेन व्याघ्रनिनदतुल्येन गभीरेण स्वरेण, दिवसस्य मध्ये मध्यन्दिने रथांगस्वरनिभेन गलस्थितेन वै स्वरेण नित्यमेव मन्त्रान् वर्णान् वा समुच्चारयेत्।। 36।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार सायंकालिक याग में उच्चार्यमाण वर्णों के स्वरादि के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

तारं तु विद्यात्सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम्
मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन।।

अन्वय–तृतीयम् सवनम् मयूरहंस–अन्यभृत–स्वराणाम्, तुल्येन शिरः स्थितेन नादेन, तत् च सदा शिरोगतम् प्रयोज्यम् तारम् तु विद्यात्।। 37

अनुवाद–सायंकालिक तृतीय सवन में हमेशा ही मोर, हंस, कोयल, के स्वरों के समान, सिर में स्थित ध्वनि से, हमेशा ही मूर्धा में स्थित, उच्चारण किए जाते हुए, वर्णों को उच्च–स्वर से उच्चारण करना चाहिए।। 37।।

'चन्द्रिका'–इसीप्रकार सायंकालिक याग अर्थात् तृतीय सवन में व्यक्ति को मोर, हंस तथा कोयल के स्वरों के समान, विद्यमान ध्वनि के माध्यम से हमेशा मूर्धा में स्थित वर्णों द्वारा, 'उच्चस्वर; से उच्चारण करके ही याग की सम्पन्नता करनी चाहिए।। 37।।

विशेष–(i) सायंकालिक याग में मन्त्रों का स्वर मोर, हंस अथवा कोयल के स्वर के समान तथा सिर में स्थित ध्वनि वाला बताया गया है।

(ii) श्लोक में प्रयुक्त अन्यभृत से अभिप्राय कोयल से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि कोयल की विशेषता होती है कि वह अपने अण्डों को कौए के घौंसले में रख देती है। कौआ ही उसके बच्चों का पालन पोषण करता है।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–34)
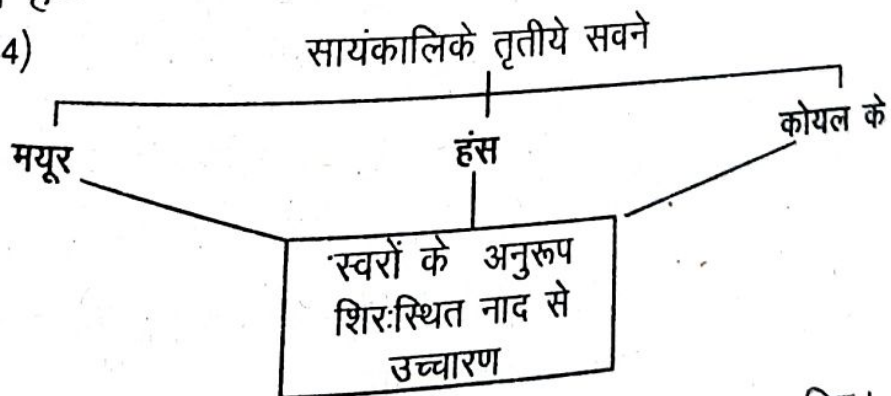
टिप्पणी– (i)प्रयोज्यम्–प्र+ √युज्+ण्यत्, प्रयोग करना चाहिए।

संस्कृत–व्याख्या– एतदतिरिक्तम् यत् सायंकाले यागः क्रियते, सायंकालिकम् यजनमिति, तस्मिन् यजने सुधीजनः, मयूर–हंस–

कोकिलनिनादानाम् तुल्यमेव खलु उत्तमांगसंस्थितेन ध्वनिना, सदैव मूर्धागतम् समुच्चार्यमानम् वर्णम्, उच्चस्वरेण विद्यात् उच्चारणम् कुर्यात्, इत्यर्थः।। 37।।

अवतरणिका–तत्पश्चात् ग्रन्थकार विभिन्न वर्णों, स्वरादि के उच्चारण स्थान के आभ्यन्तर प्रयत्न के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

अचोस्पृष्टाः यणस्त्वीषन्नेमस्पृष्टाः शलः स्मृताः।
शेषाः स्पृष्टाः हलः प्रोक्ता निबोधानुप्रदानतः।।38।।

अन्वय– अचः अस्पृष्टाः, यणः तु ईषद्, शलः, नेमस्पृष्टाः स्मृताः, शेषाः हलः, स्पृष्टाः प्रोक्ताः, अनुप्रदानतः निबोध।। 38।।

अनुवाद–स्वरों का आभ्यन्तरप्रयत्न अस्पृष्ट विवृत, यण् का ईषद् स्पृष्ट तथा ईषद्विवृत, शल् का अर्थस्पृष्ट तथा अर्धविवृत है। अवशिष्ट अन्य हल् नामक व्यंजन वर्णों का आभ्यन्तर–प्रयत्न स्पृष्ट कहा गया है। इसके बाद बाह्यप्रयत्न के भेद से वर्णभेद समझना चाहिए।। 38।।

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने सर्वप्रथम स्वरों के आभ्यन्तर–प्रयत्न के विषय में बताया है। उसके बाद उन्होंने यण् प्रत्याहार में परिगणित 'य,व,र,ल' तथा शल् प्रत्याहार के वर्णों 'श,ष,स, ह' के विषय में उनके आभ्यन्तर–प्रयत्न का उल्लेख किया है। अन्त में शेष सभी व्यंजन वर्णों के आभ्यन्तर–प्रयत्न की बात का कथन किया है, जिसे हम इसप्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

(क) **अस्पृष्ट अर्थात् विवृत**– सभी अच् स्वरों का आभ्यन्तर–प्रयत्न कहा गया है।

(ख) **ईषत्स्पृष्ट अर्थात् ईषत्विवृत्**– यण् प्रत्याहार के वर्ण य,व,र,ल का आभ्यन्तर–प्रयत्न कहा गया है।

(ग) **अर्धस्पृष्ट अर्थात् अर्धविवृत**– शल् प्रत्याहार के वर्णों श,ष,स,ह का आभ्यन्तर–प्रयत्न कहा गया है।

(घ) **स्पृष्ट**– शेष सभी हल् अर्थात् व्यंजन वर्णों का आभ्यन्तर–प्रयत्न कहा गया है।

प्रस्तुत श्लोक में आभ्यन्तर प्रयत्नों के विषय में कहा गया है। उसके बाद अग्रिम श्लोक में बाह्य प्रयत्नों के बारे में कहेंगे।

विशेष–(i) सिद्धान्तकौमुदीकार आचार्य भट्टोजिदीक्षित ने भी आभ्यन्तर–प्रयत्न के चार ही भेदों को अपनी स्वीकृति प्रदान की है। वहाँ उन्होंने इन्हें स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत तथा संवृत भेदों वाला माना है। उनके मत में,

क) सभी स्पर्श वर्णों का 'स्पृष्ट' नामक आभ्यन्तर प्रयत्न होता है।

ख) इसीप्रकार सभी 'अन्तस्थ' वर्णों का आभ्यन्तर–प्रयत्न, ईषत् स्पृष्ट होता है।

ग) उष्म, ह एवं स्वर वर्णों का 'विवृत' नामक आभ्यन्तर–प्रयत्न होता है।?

घ) इसके अलावा ह्रस्व 'अ' का प्रयत्न, प्रयोग की स्थिति में 'संवृत' होता है, किन्तु प्रक्रिया की दशा में यह 'विवृत' प्रयत्न ही रहता है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–35)

आभ्यन्तर प्रयत्न

अस्पृष्ट/विवृत (समस्त अच्–स्वर) | **ईषत्स्पृष्ट/ईषद्विवृत (यण्)** | **अर्धस्पृष्ट/अर्ध विवृत (शल्)** | **स्पृष्ट (हल्)**
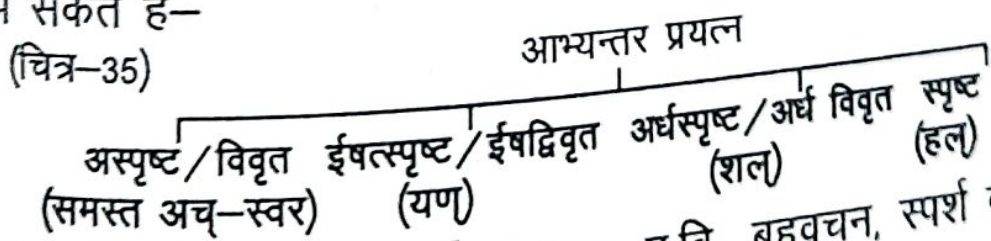
टिप्पणी– (i) स्पृष्टाः– √स्पृश्+क्त, प्र.वि., बहुवचन, स्पर्श वर्ण।

(ii) प्रोक्ताः– प्र+ √वच्+क्त, प्र.वि, बहुवचन, कहे गए हैं।

संस्कृत–व्याख्या–अच् अर्थात् स्वराः स्पर्श–अभावरूपाः भवन्ति। अर्थात् विवृताः भवन्ति, इत्यर्थः। एवमेव यण् प्रत्याहारे परिगणिताः वर्णाः यवरलाः इति, एते ईषत्स्पृष्टाः भवन्ति, इति। तथाच शल् प्रत्याहारे स्वीकृताः वर्णाः शषसहाः इति, सर्वेऽर्धस्पृष्टत्वम् भजन्ति, इति।

अवशिष्टाश्च व्यंजनवर्णाः स्पर्शरूपवन्तः अभिहिताः सन्ति। बाह्यप्रयत्नस्तु अग्रे निबोधत, अवगच्छ, इत्यर्थः।। 38।।

अवतरणिका–इससे पूर्व के श्लोक में ग्रन्थकार ने आभ्यन्तर–प्रयत्न के विषय में विस्तार से उल्लेख किया। पुनः प्रस्तुत श्लोक में बाह्य–प्रयत्न वाले वर्णों के सम्बन्ध में कहते हैं कि–

अमोऽनुनासिका न ह्रौ नादिनः हझषः स्मृताः।
ईषन्नादा यणो जश्च श्वासिनस्तु खफादयः।। 39।।
ईषच्छ्‌वासांश्चरो विद्याद् गोर्धामैतत्प्रचक्षते।
दाक्षीपुत्रपाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवि।। 40।।

अन्वय–अमः अनुनासिकाः, ह्रौ न, हझषः नादिनः स्मृताः, यणः, जश् च ईषद् नादाः, खफादयः श्वासिनः (भवन्ति)। चरः, ईषत् श्वासान् विद्यात्, एतत् गोः धाम प्रचक्षते, तेन दाक्षीपुत्र–पाणिनिना इदम् भुवि व्यापितम्।। 39–40।।

अनुवाद–अम्, अनुनासिक, हकार तथा रेफ अनुनासिकत्व से रहित, ह तथा झष् का नाद, बाह्यप्रयत्न कहा गया है। यण् तथा जश् ईषत्नाद वाले तथा खफ आदि का श्वास से युक्त, बाह्य प्रयत्न, जानना चाहिए। सुधीलोग इस शास्त्र को वाणी का धाम कहते हैं। प्रसिद्ध दाक्षीपुत्र पाणिनि ने इस शास्त्र को सम्पूर्ण जगत् में प्रवर्तित किया था।। 39–40।।

'चन्द्रिका'– श्लोक संख्या 30 को भलीप्रकार समझने के लिए हमें आचार्य पाणिनि के चौदह प्रत्याहार सूत्रों से बनने वाले, इन प्रत्याहारों को समझना होगा।

- अम् प्रत्याहार में–अ,इ,उ,ऋ,लृ,ए,ओ,ऐ,औ,ह,य,व,र,ल,ञ,म,ङ,ण,न इत्यादि वर्णों का प्रयोग होता है।
- झष् प्रत्याहार के अन्तर्गत झ,भ, घ,ढ,ध, इत्यादि वर्ण आते हैं, इनका तथा

- इसके अतिरिक्त अनुनासिक, हकार तथा रेफ अनुनासिकत्व से रहित 'ह' का ग्रन्थकार ने यहाँ नाद एवं बाह्यप्रयत्न कहा है।
- इसके अतिरिक्त यण् प्रत्याहार में प्रयुक्त ईषत्नाद वाले य,व,र,ल, तथा जश् प्रत्याहार में प्रयुक्त ज,ब,ग,ड,द, वर्ण तथा ख, फ आदि का श्वास वाला, बाह्यप्रयत्न जानना चाहिए।
- प्रत्याहार से वर्णों को जानने के लिए आचार्य पाणिनि के निम्न पाद टिप्पणी में प्रत्याहार सूत्रों का अवलोकन करना चाहिए।[1]
- किसी भी प्रत्याहार के वर्णों को जानने के लिए, प्रत्याहार का प्रथम वर्ण समेत, अन्तिम वर्ण से पूर्व के वर्णों को ही प्रत्याहार में ग्रहण करते हैं।

इसी क्रम में आगे ग्रन्थकार कहते हैं कि– विद्वानों का मानना है कि यह व्याकरण शास्त्र वस्तुतः वाणी का परमधाम है, जिसे अत्यन्त प्रसिद्ध दाक्षी पुत्र आचार्य पाणिनि ने सम्पूर्ण संसार में प्रवर्तित किया था।। 39–40।।

विशेष–(i) श्लोक संख्या चालीस के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य पाणिनि की माता का नाम 'दाक्षी' था।

(ii) इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि आचार्य पाणिनि ने अपने किसी शिष्य को इस शिक्षा–ग्रन्थ का उपदेश दिया, जिसने बाद में इसे लिपिबद्ध किया।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–36)
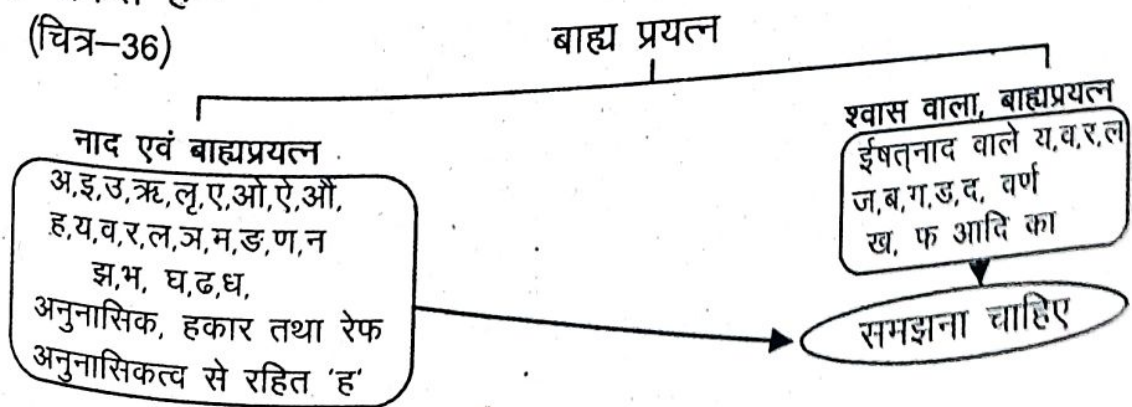
[1] - अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल्।

टिप्पणी– (i)प्रचक्षते–प्र+ √चक्ष्+तिप्, आत्मनेपद, प्रथमपुरुष, एक वचन, कहा जाता है।

(ii) व्यापितम्–वि+ √आप्+इतच्, व्याप्त किया हुआ।

संस्कृत–व्याख्या–अम् प्रत्याहारे परिगणिताः वर्णाः, अनुनासिकत्व–युक्ताः हकाररेफौ च न अनुनासिकौ हकारझष् प्रत्याहारस्य वर्णाः, संवारघोषयुक्ताः अभिहिताः। एवमेव यण् प्रत्याहारे परिगणिताः वर्णाः, जश् प्रत्याहारे च विगणिताः वर्णाः, ईषद्नादवन्तः, खफ् प्रत्याहारस्य वर्णाः विवाराघोषयुक्ताः, भवन्ति। एतत् शास्त्रम् वाचः स्थानम् निगदन्ति, इति सुधियः, इति येन प्रथितेन दाक्षितनयपाणिनिना महर्षिणा अस्याम् पृथिव्याम् प्रवर्तितम् अस्ति।। 39–40।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् वेदपुरुष की कल्पना करके, ग्रन्थकार उसके चरण, हाथ, नेत्र, श्रोत्र, नासिका तथा मुख के रूप में विभिन्न शास्त्रों का उल्लेख करते हुए, व्याकरण को इस वेदपुरुष का मुख बताते हैं–

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।। 41।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्माद् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। 42।।

अन्वय– छन्दः वेदस्य पादौ, अथ हस्तौ कल्पः पठ्यते, चक्षुः ज्योतिषाम् अयनम्, श्रोत्रम् निरुक्तम् उच्यते। वेदस्य घ्राणम् तु शिक्षा, मुखम् व्याकरणम् स्मृतम्, तस्मात् सांगम् अधीत्य एव ब्रह्मलोके महीयते।। 41–42।।

अनुवाद–छन्द इस वेदरूपी पुरुष के पैर हैं तथा हाथ इसके कल्प नामक वेदांग के रूप में पढ़े जाते हैं। इसके नेत्र ज्योतिष शास्त्र हैं एवं श्रोत्र के रूप में निरुक्त कहा गया है। इस वेदपुरुष की नासिका तो वस्तुतः शिक्षा ही है, जबकि इसका मुख व्याकरण को कहा गया है। इसलिए इन सभी का अंगों के साथ अध्ययन करके ही व्यक्ति ब्रह्मलोक में महिमावान् होता है।। 41–42।।

'चन्द्रिका'– वेदपुरुष की कल्पना के अन्तर्गत हमें इसके अंग के रूप में वेदांग–शास्त्रों को इसप्रकार समझना चाहिए–

विशेष–(i) वेदपुरुष की परिकल्पना अत्यन्त सुन्दर तथा सटीक बन पड़ी है, जिससे ग्रन्थकार की प्रतिभा भी प्रदर्शित हुई है।

(ii) वेदों में छन्दों का अत्यधिक महत्त्व है,[1] जिसे यहाँ ग्रन्थकार ने वेदपुरुष के आधार 'चरण' के रूप में वर्णित किया है।

(iii) षडंगों सहित वेदों का अध्ययन करने पर ही व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(iv) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को अत्यन्त संक्षेप में इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–37)
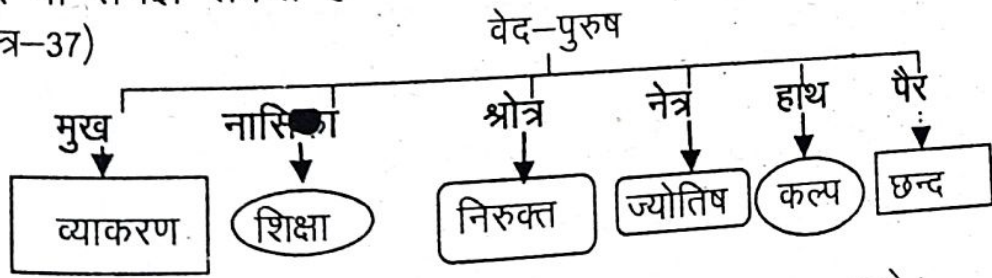
टिप्पणी– (i) अधीत्य– अधि+ √इण्+ल्यप्, अध्ययन करके।

संस्कृत–व्याख्या– वेदस्य चरणौ वस्तुतः पिंगलमुनिविरचितम् छन्दः शास्त्रम् विद्यते, तस्य वेदस्य हस्तौ च कल्पशास्त्रम् अस्ति। चक्षुः तस्य वेदस्य ज्योतिषशास्त्रम् अभिधीयते तथा निरुक्तशास्त्रम् अस्य वेदस्य

---

1 - द्रष्टव्य, लेखक द्वारा अनूदित व सम्पादित शांखायन ब्राह्मण, प्रकाशक, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली– 7। 2020। भूमिका में –शांखायन ब्राह्मण में छन्दों का महत्त्व, शीर्षक से विस्तृत लेख।

श्रोत्रौ स्तः, श्रुतेः नासिका तु शिक्षाशास्त्रम् कथ्यते। मुखम् आननम् अस्य वेदस्य वस्तुतः व्याकरणम् कथितम् अस्ति। अनेनैव कारणेन अंगसहितम् वेदम् श्रुतिम् वा पठित्वा बुधजनः ब्रह्मणः लोके समर्च्यते पूज्यते वा।। 41–42।।

अवतरणिका–इसप्रकार वेदपुरुष की कल्पना करके, उसके अंगों का विस्तार से उल्लेख करने के बाद, ग्रन्थकार उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीनों स्वरों की व्यक्ति के हाथ की अंगुलियों में स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–

उदात्तमाख्याति वृषोऽगुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा।
उपान्तेमध्ये स्वरितं द्रुतश्च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव।।

अन्वय– अंगुलीनाम् वृषः, प्रदेशिनी–मूल–निविष्ट–मूर्धाः उदात्तम्, उपान्तमध्ये द्रुतम् च स्वरितम्, कनिष्ठिकायाम् अनुदात्तम् एव आख्याति।। 43।।

अनुवाद–सभी अंगुलियों में श्रेष्ठ अँगूठे तथा तर्जनी के मूल में सम्बद्ध के अग्रभाग वाला होकर, सामवेद आश्रित उदात्त स्वर को, अनामिका के मध्यभाग से युक्त होकर, स्वरित को तथा कनिष्ठिका के मध्यभाग से अन्वित होकर, अनुदात्त स्वर को ही अभिव्यक्त करता है।। 43।।

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने सर्वप्रथम उदात्त स्वर की स्थिति को हाथ की अंगुलियों में स्पष्ट किया है। तदनुसार–

सभी अँगुलियों में श्रेष्ठ अँगूठे तथा तर्जनी के मूल भाग से सम्बद्ध अग्रभाग वाला होकर, सामवेद के आश्रय में रहने वाला **उदात्त स्वर** विद्यमान रहता है।

इसके अलावा अनामिका के मध्य भाग से जुड़कर स्वरित की स्थिति को समझना चाहिए।

जबकि कनिष्ठिका के मध्य भाग से जुड़कर अनुदात्त स्वर की स्थिति होती है।

इसप्रकार उक्त तीनों उदात्त, स्वरित तथा अनुदात्त की स्थिति को हाथ की अँगुलियों के विभिन्न स्थान पर स्थित मानना चाहिए। इसलिए इन स्वरों के उच्चारण करते समय, इन्हीं अँगुलियों के निर्धारित भाग पर ही अँगुलि को रखना चाहिए।

विशेष–(i) अङ्गुष्ठ को ग्रन्थकार ने हाथ की सभी अँगुलियों में श्रेष्ठ बताया है तथा वेदमन्त्रोच्चारण में तर्जनी, अनामिका तथा कनिष्ठिका अँगुलियों के महत्त्व का प्रदर्शन किया गया है।

(ii) वेदों में प्रयुक्त उदात्त स्वर पर किसी प्रकार का कोई चिह्न नहीं लगाया जाता है, किन्तु अनुदात्त स्वर के नीचे पड़ी लाइन तथा स्वरित स्वर के ऊपर खड़ी लाइन का प्रयोग करते हैं।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–38) स्वरों की हाथ की अँगुलियों में स्थिति

उदात्त	स्वरित	अनुदात्त
अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी के मूल से सम्बद्ध भाग में होकर	अनामिका के मध्य भाग से संयुक्त होकर	कनिष्ठिका के मध्यभाग से अन्वित होकर
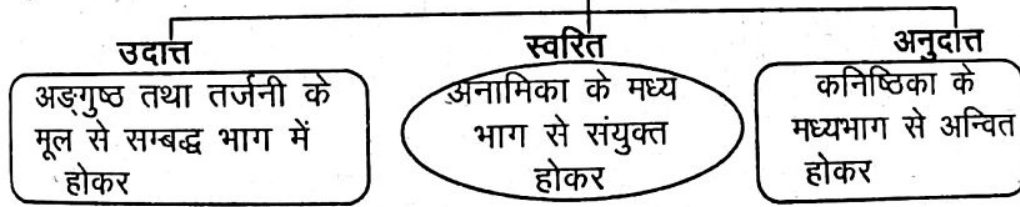
संस्कृत–व्याख्या–अँगुलीनाम् श्रेष्ठः अङ्गुष्ठः, इति अभिप्रायः। प्रदेशिनी मूले निविष्टमूर्द्धा यस्य स तथाभूतः, तर्जनीमूलसम्बद्धाग्रभागः तत् उदात्ताख्यम् स्वरम्। एवमेव अनामिकायाः मध्ये भागे सम्पृक्तः क्षिप्रम् यथा स्यात् तथा, कनिष्ठिकायाः मध्ये संयुतः अनुदात्तनामकम् स्वरम् खलु अभिव्यनक्ति।। 43।।

अवतरणिका–उसके बाद ग्रन्थकार उदात्त, प्रचय, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों की अँगुलियों की स्थिति को पुनः स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–

उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात् प्रचयं मध्यतोऽङ्गुलिम्।
निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम्।। 44।।

अन्वय–उदात्तम् प्रदेशिनीम्, प्रचयम् मध्यतः अंगुलिम्, निहतम् कनिष्ठिक्याम्, स्वरितम् उपकनिष्ठिकाम् विद्यात्।। 44।।

अनुवाद–उदात्त का तर्जनी–साध्य, प्रचय को मध्यमा अंगुलिसाध्य, अनुदात्त को कनिष्ठिका साध्य एवं स्वरित को अनामिका साध्य समझना चाहिए।। 44।।

'चन्द्रिका'–वेदों में प्रयुक्त होने वाला 'उदात्त' स्वर, वस्तुतः तर्जनी पर ही सिद्ध होता है। इसीप्रकार 'प्रचय' नामक स्वर मध्यमा अँगुली पर ही सिद्ध है तथा 'अनुदात्त' नामक स्वर हमारे हाथ में कनिष्ठिका अँगुली पर ही सिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'स्वरित' स्वर, हाथ में अनामिका नामक अँगुली पर साध्य मानना चाहिए।। 44।।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में चार स्वरों के लिए हाथ की अलग–अलग चार अँगुलियों का उल्लेख किया गया है, इन स्वरों का उच्चारण करते समय, वक्ता क़ा अङ्गुष्ठ श्रेष्ठ, इन्हीं अँगुलियों पर आएगा, तभी वेदमन्त्र सिद्ध हो सकेंगे, यह अभिप्राय है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–39) वेदों में प्रयुक्त चार स्वरों की अँगुलियों में साध्यता

उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	प्रचय
तर्जनी साध्य	**कनिष्ठिका साध्य**	**अनामिका साध्य**	**मध्यमा साध्य**

संस्कृत–व्याख्या–वेदेषु उदात्त–आख्यम् स्वरम्, तर्जनी–साध्यम्, प्रचय–स्वरम् च मध्यमा–साध्यम् अस्ति। अनुदात्तनाम स्वरम् कनिष्ठिका–साध्यम् वर्तते। एवमेव स्वरितनाम स्वरम् उपकनिष्ठिक़ाम् अर्थात् अनामिका–साध्यम् अवगन्तव्यम्।। 44।।

अवतरणिका–इसप्रकार यहाँ तक उदात्तादि स्वरों की हाथ की अँगुलियों में स्थिति तथा उनकी साध्यता का कथन करने के बाद, ग्रन्थकार उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित के नौ भेदों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम्।
मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नवपदशय्या।

अन्वय– अन्तोदात्तम्, आद्युदात्तम्, उदात्तम्, अनुदात्तम्, नीच–स्वरितम्, मध्योदात्तम्, स्वरितम्, द्व्युदात्तम्, त्र्युदात्तम् इति नवपद–शय्या (भवति)।। 45।।

अनुवाद–स्वरों की संस्थिति कुल नौ प्रकार के पदों अर्थात् 'नवपदशय्या' में विद्यमान होती है। जैसे– उदात्त, आद्युदात्त, अन्तोदात्त, मध्योदात्त, द्व्युदात्त, त्र्युदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा नीच स्वरित ।। 45।।

'चन्द्रिका'–उपर्युक्त श्लोक में ग्रन्थकार ने विभिन्न पदों में, उदात्त की संख्या तथा प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त के आधार पर भेद प्रदर्शित की है। इन भेदों में यहाँ कुल छः भेदों का कथन किया गया है, जबकि अनुदात्त का केवल एक ही भेद बताया है। इसके अतिरिक्त स्वरित के सामान्य स्वरित तथा नीच स्वरित रूप में भेद करते हुए कुल दो भेदों का कथन किया है।। 45।।

विशेष–(i) यद्यपि वेद में सामान्य नियम यह है कि एक पद में एक ही उदात्त स्वर होता है, किन्तु यहाँ एक ही पद में दो या तीन तक उदात्त के होने से उसके भेदों के आधाररूप में परिगणन किया गया है।

(ii) सामान्य स्थिति यह है कि उदात्त के बाद आने वाला अनुदात्त स्वरित हो जाता है तथा उसे हम उस वर्ण के ऊपर खड़ी लाइन द्वारा प्रदर्शित करते हैं। उसे केवल 'स्वरित' संज्ञा दी गयी है, जबकि नीच स्वरित नाम से इसके दूसरे भेद का भी उल्लेख किया गया है।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–40)
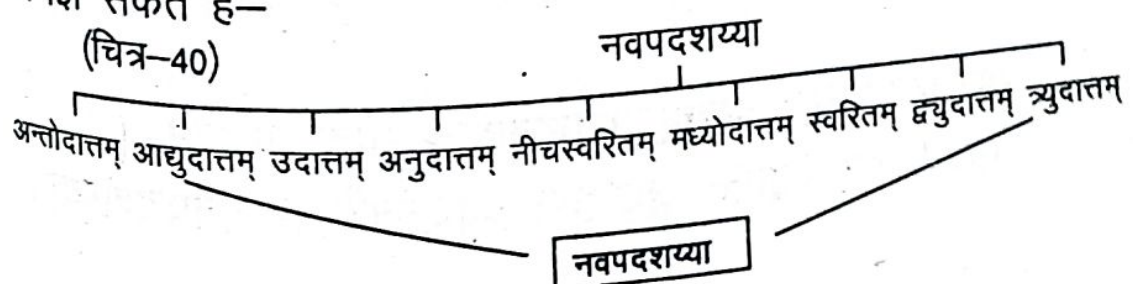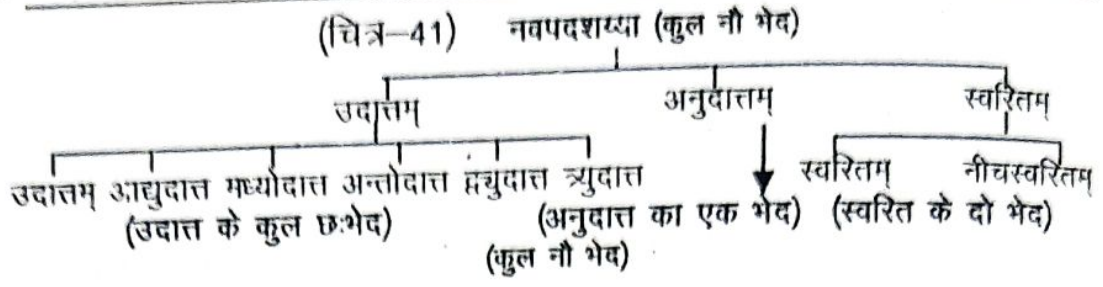
संस्कृत–व्याख्या–कस्यापि पदे अन्तिमे स्थाने उदात्तो यत्र स्यात्, सः अन्तोदात्तः, एकमेव एकस्मिन् पदे कुत्रापि उदात्तः स्यात्, सः उदात्तः भवेत्, यदि एषः उदात्तः पदस्य मध्ये भवेत्, तर्हि मध्योदात्तः कथयिष्यति। यदि एकस्मिन् खलु पदे उदात्तानाम् संख्या द्विर्भविष्यति तर्हि पदोऽयम् द्व्योदात्तः स्यात्, एवमेव यदि पदे कस्मिन् अपि उदात्तानाम् संख्या त्रिः भविष्यति, तर्हि एषः त्र्युदात्तः भवेत्। एवम् उदात्तानाम् भेदानाम् संख्या षट् भवति मिलित्वा यथा चित्रे प्रदर्शितम्। एवमेव एकः सामान्यः स्वरितः भवति, अन्यस्तु नीचस्वरितोऽपि भवति। अनेन प्रकारेण स्वरितस्य द्वौ भेदौ भवतः। तथा च अनुदात्तस्य एको वै भेदो भवति। अनेन एषा नव पदशय्या कथ्यते, यतोहि स्वराणाम् नवसु पदेषु शय्या भवतीति।। 45।।

अवतरणिका–इसप्रकार उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित से सम्बन्धित नवपदशय्या का विवेचन करने के बाद, ग्रन्थकार उक्त नौ स्वरों की स्थिति एक ही वाक्य में प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि–

अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषां स्वर्बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती।
अग्निरित्यन्तोदात्तं सोम इत्याद्युदात्तम्।
प्रेत्युदात्तं व इत्यनुदात्तं वीर्यं नीचस्वरितम्।।46।।
हविषां मध्योदात्तं स्वरिति स्वरितम्।
बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तमिन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तम्।।47।

अन्वय– अग्निः सोमः प्र वः वीर्यम् हविषाम् स्वः बृहस्पतिः इन्द्राबृहस्पती (इत्यस्मिन् उदाहरणे) अग्निः, इति अन्तोदात्तम्, सोमः, इति आद्युदात्तम्, प्र, इति, उदात्तम्, वः, इति अनुदात्तम्, वीर्यम्, इति नीच–स्वरितम्, हविषाम्, इति, मध्योदात्तम्, स्वरः, इति, स्वरितम्, बृहस्पतिः, इति, द्व्युदात्तम्, इन्द्राबृहस्पती, इति त्र्युदात्तम्।। 46–47।।

अनुवाद– अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषां स्वर्बृहस्पतिरिन्द्रा–बृहस्पती, इत्यादि उदाहरण में 'अग्नि' पद अन्तोदात्त है, 'सोम', यह पद आद्युदात्त है, 'प्र,' यह उदात्त है, 'वः' यह अनुदात्त है। इसीप्रकार 'वीर्यम्', यह पद नीचस्वरित है। 'हविषाम्' यह पद मध्योदात्त है। 'स्वरः', यह पद स्वरित है। 'बृहस्पतिः', यह पद दो उदात्त वाला है, जबकि 'इन्द्राबृहस्पती', यह पद तीन उदात्तों से युक्त है।। 46–47।।

'चन्द्रिका'–भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रस्तुत किया जा सकता है–

(चित्र–41)

एक ही वेदवाक्य में नवपदशय्या

अग्निः	सोमः	प्र	वः	वीर्यम्	हविषाम्	स्वः	बृहस्पतिः	इन्द्राबृहस्पती
अन्तोदात्तम्	आद्युदात्तम्	उदात्तम्	अनुदात्तम्	नीचस्वरितम्	मध्योदात्तम्	स्वरितम्	द्व्युदात्तम्	त्र्युदात्तम्

संस्कृत–व्याख्या– अग्निः सोमः प्र वो वीर्यम् हविषाम् स्वर्बृहस्पति–रिन्द्राबृहस्पती, इत्यादि उदाहरणे प्रत्येके पदे, अनेन क्रमेण स्वराः सन्ति। यथा– सोमः, आद्युदात्तम्, प्र इति उदात्तम्, वः, इति अनुदात्तम्, वीर्यम् इति नीचस्वरितम्, हविषाम् इत्यत्र मध्योदात्तम्, स्वरः इति स्वरितम्, बृहस्पतिः, इति द्व्यनुदात्तम्, इन्द्राबृहस्पती, इति त्र्युदात्तम् अस्ति।। 46–47।

अवतरणिका–तत्पश्चात् उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा प्रचय स्वरों के मुखादि में उच्चारण स्थानों का कथन करते हैं कि–

अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः।
स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः।। 48।।

अन्वय– अनुदात्तः हृदि ज्ञेयः, उदात्तः मूर्धनि उदाहृतः, स्वरितः, कर्णमूलीयः, प्रचयः, सर्वास्ये स्मृतः ।। 48।।

अनुवाद– अनुदात्त स्वर का उच्चारण स्थान 'हृदय' भाग में, उदात्त स्वर का स्थान 'मूर्धा' भाग में, स्वरित स्वर का 'कर्ण के मूल' में एवं 'प्रचय' का 'सम्पूर्ण मुखभाग' में उच्चारण स्थान समझना चाहिए।

इसलिए इन–इन स्थानों से हाथों का संचालन करके, उन–उन स्वरों का समुच्चारण करना चाहिए।। 49।।

'चन्द्रिका'–भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) ध्यातव्य है कि उदात्त के बाद में प्रयुक्त अनुदात्त को सामान्यरूप से स्वरित हो जाता है, उस स्वरित के बाद आने वाले सभी अनुदात्त स्वर **'प्रचय'** कहलाते हैं, जिसे यहाँ सम्पूर्ण मुख भाग में बताया गया है। 'प्रचय' स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाता है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रदर्शित कर सकते हैं–

(चित्र–42) विभिन्न मुख्य स्वरों का शरीर में स्थान

अनुदात्तः	उदात्तः	स्वरितः	प्रचयः
हृदि ज्ञेयः,	मूर्धनि उदाहृतः,	कर्णमूलीयः,	सर्वास्ये स्मृतः

संस्कृत–व्याख्या–अनुदात्तः एतत् नाम स्वरः हृदयप्रदेशे जानीयात्। उदात्तः एतन्नामकः स्वरः, शरीरस्य उत्तमांगे कथितः, एवमेव स्वरितः एतत् नाम स्वरः, श्रोत्रमूलीयोऽस्ति। 'प्रचयः' एतत् नामकः स्वरः अशेष–आनने कथितः विद्वद्भिः।। 48।।

अवतरणिका– इसप्रकार उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा प्रचय इन चार स्वरों की स्थिति को शरीर के विभिन्न अंगों में स्थापित करने के बाद, ग्रन्थकार नीलकण्ठ, कौआ, मयूर तथा नेवले के शब्दों में विभिन्न स्वरों की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–

चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं चैव वायसः।
शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्द्धमात्रकम्।। 49।।

अन्वय–चाषः मात्राम् वदते, वायसः च द्विमात्राम् एव, शिखी त्रिमात्रम् रौति, नकुलः तु अर्द्धमात्रकम् ।। 49।।

अनुवाद–नीलकण्ठ(चाषः) पक्षी एक मात्राकाल में बोलता है और कौआ दो मात्राकाल में तथा मोर तीन मात्राकाल में केकारव करता है, जबकि नेवला तो अर्द्धमात्रा काल में ही बोलता है।। 49।।

'चन्द्रिका'–भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) उपर्युक्त श्लोक से ग्रन्थकार का प्राणिविज्ञान विषयक सूक्ष्मज्ञान अभिव्यंजित हो रहा है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–43) नीलकण्ठादि पक्षियों द्वारा प्रयुक्त मात्रा–काल

चाषः(नीलकण्ठ)	वायसः	शिखी	नकुलः
मात्राम् वदते,	द्विमात्राम्	त्रिमात्रम् रौति	तु अर्द्धमात्रकम्
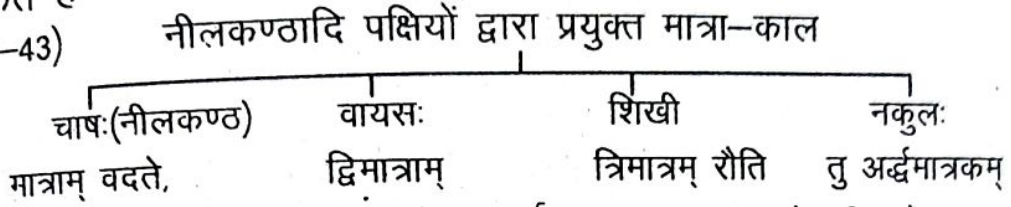
टिप्पणी– (i)वदते, आर्ष प्रयोग √वद् धातु परस्मैपदी है, अतः लट्लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन में 'वदति' पद बनेगा अथवा छन्द के अनुरोध से यह छान्दस् प्रयोग होने से आत्मनेपद में प्रयुक्त हुआ है।

(ii)रौति–√रु (शब्दे) + तिप्, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, शब्द करता है।

संस्कृत–व्याख्या–नीलकण्ठः, इति पक्षीविशेषः संस्कृते चाषः, कथ्यते। अस्य ध्वनिः एकमात्राकालिकः मन्यते। एवमेव वायसः काकः वा द्विमात्रकम् खलु उच्चारयति। तथा शिखी अर्थात् मयूरः त्रिमात्रकम् स्वरम् स्वनति। तथा च नकुलः एतत् नामकः प्राणीविशेषः सर्पेण सह शत्रुत्वमावहति, सः अर्द्धमात्रकम् स्वरम् करोति, इति, अभिप्रायो–ऽस्ति।।49।।

अवतरणिका– यहाँ तक विभिन्न प्राणियों के मुख से की जाने वाली ध्वनियों में एकमात्रा, दो मात्रा तथा तीन मात्रा एवं अर्द्धमात्रा काल की बात का कथन करने के बाद, ग्रन्थकार प्रस्तुत श्लोक में आचारहीन शिक्षक से सीखकर किए गए, वेदपाठ के परिणाम का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

कुतीर्थादागतं दग्ध्मपवर्णं च भक्षितम्।
न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात्।। 50।।

अन्वय– कुतीर्थात् आगतम् दग्ध्म्, अपवर्णम् भक्षितम् च, (यत् ब्रह्म वर्तते) तस्य पाठे किल्बिषात् पाप–अहेः इव मोक्षः न अस्ति ।। 50।।

अनुवाद–**आचारहीन गुरु से प्राप्त किया हुआ नीरस, अशुद्ध वर्णों से युक्त, स्पष्टता से पूर्णतया रहित, वेद का पाठ करने पर पाप के कारण, दुष्ट सर्प के समान, पाठ को करने वाले को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।। 50।।**

'चन्द्रिका'–भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने वेद–पाठ को सीखने के विषय में शिक्षक अर्थात् गुरु के सदाचारी होने पर विशेष बल दिया है, क्योंकि आचारहीन शिक्षक से सीखने के बाद, तो वह अशुद्ध ही उच्चारण करेगा, जिससे उस वेदपाठी को मोक्ष की प्राप्ति होना, किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं है।

(ii) शुद्ध वेदपाठ का एक उद्देश्य मोक्ष–प्राप्ति भी बताया गया है।

(iii) श्लोक में प्रयुक्त 'कुतीर्थ' पद का अभिप्राय यहाँ 'आचारहीन गुरु' अर्थात् शिक्षक से ग्रहण करना चाहिए।

(iv) श्लोक में प्रयुक्त 'पापाहेः इव' में एक साथ रूपक तथा उपमा दो अलंकारों का सौन्दर्य द्रष्टव्य है, क्योंकि 'पापाहेः' का अभिप्राय है–पाप रूपी (दुष्ट) सर्प ऐसा अर्थ करने पर पाप तथा सर्प में अभेद की स्थापना करने से रूपक अलंकार तथा उपमासूचक 'इव' का प्रयोग होने से, 'पापी सर्प के समान' ऐसा अर्थ करने पर, उपमालंकार का सौन्दर्य ग्रन्थकार की आलंकारिक शैली की पुष्टि करता प्रतीत होता है। उल्लेखनीय है कि यहाँ ये दोनों ही अलंकार अत्यन्त स्वाभाविक तथा भावबोधन में सहायक सिद्ध हुए है, क्योंकि यहाँ पाप की उपमा सर्प के साथ अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है।

(v) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–44)
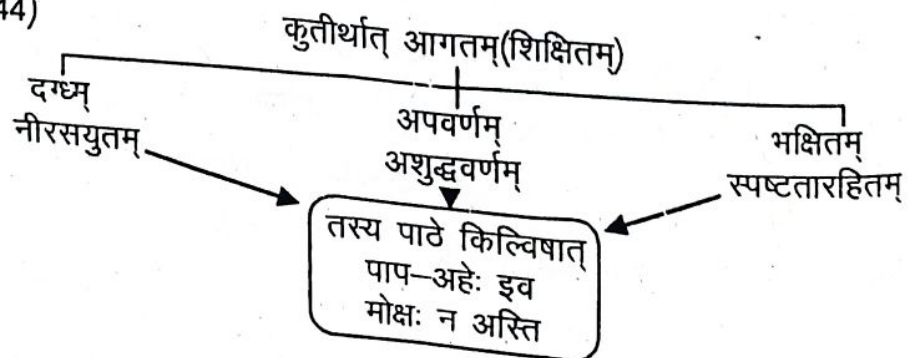
टिप्पणी– (i) अस्ति– √अस्+तिप्, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, है।

संस्कृत–व्याख्या–कुतीर्थात् आचारहीनात् गुरोः शिक्षितम् नीरस–युतम्, अशुद्धवर्णम्, सुस्पष्टतारहितम्, यदपि वेदोऽस्ति तस्य वेदस्य पाठविषये सम्मुच्चारणे पातकहेतोः दुष्टसर्पाद् इव परमपदाप्तिः न भवति, इति, नैव विषयेऽस्मिन् संशयलेशोऽपि विद्यते, इति भावः, अतः सुतीर्थादेव वेदानाम् अभ्यासः करणीयः, इति ।। 50 ।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् ग्रन्थकार सदाचारयुक्त गुरु से वेदों के उच्चारण प्रकार को सीखने पर, उच्चारण में आने वाली विशेषताओं तथा उससे प्राप्त होने वाले फल का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नाय्यं सुव्यवस्थितम्।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ।। 51 ।।

अन्वय– सुतीर्थात् आगतम् व्यक्तम्, सु आम्नाय्यम्, सु–व्यवस्थितम्, सुस्वरेण, सुवक्त्रेण प्रयुक्तम् 'ब्रह्म' राजते ।। 51 ।।

अनुवाद–सदाचारयुक्त, गुरु से प्राप्त किया हुआ, सुस्पष्ट, संप्रदाय से पवित्र, सुव्यवस्थित, मधुर ध्वनियुक्त, श्रेष्ठ कण्ठादि द्वारा उच्चारण किया हुआ, 'वेद' सुशोभित होता है ।। 51 ।।

'चन्द्रिका'–इससे पूर्व आचारहीन अर्थात् कुतीर्थ से आए हुए शिक्षक से प्राप्त वेद–ज्ञान की हानियों का उल्लेख ग्रन्थकार ने किया। पुनः प्रसंग प्राप्त होने से प्रस्तुत श्लोक में सदाचारी गुरु से प्राप्त हुए वेदपाठ के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

यदि व्यक्ति ने वेद का पाठ अर्थात् उसका ज्ञान सदाचारी गुरु के मार्गनिदर्शन में किया है, तो वह निश्चय ही सुस्पष्ट होगा, अपने आम्नाय अर्थात् सम्प्रदाय से पवित्र होगा, सुव्यवस्थित होगा, सुन्दर स्वर से युक्त होगा तथा मधुर–कण्ठ द्वारा समुच्चारित किया गया, यह वेद पाठक के शरीर में सुशोभित होगा।

विशेष–(i) व्यक्ति को अपना शिक्षक चुनते समय, उसके आचरण के विषय में अवश्य विचार करना चाहिए, इस बात की ओर संकेत किया गया है।

(ii) सदाचारी गुरु से प्राप्त होने वाले वेदज्ञान की कुल पाँच विशेषताओं की गणना की गयी है।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–45) सदाचारी गुरु से प्राप्त वेदज्ञान

सुस्पष्ट | संप्रदाय से पवित्र | सुव्यवस्थित | मधुर ध्वनियुक्त | श्रेष्ठ कण्ठादि द्वारा उच्चारित

टिप्पणी– (i)प्रयुक्तम्– प्र+ √युज्+क्त, प्रयुक्त किया गया।

(ii) व्यक्तम्– वि+ √अञ्ज+क्त, अभिव्यक्त हुआ।

(iii) आगतम्– आ+ √गम्+क्त, आया हुआ ।

संस्कृत–व्याख्या–ग्रन्थकारः सदाचारी शिक्षकमधिकृत्य वेदपाठविषये कथयति यत्– यः जनः सदाचारी शिक्षकस्य सान्निध्ये वेदज्ञानम् अधिकरोति, तस्य वेदपाठे एतत् वैशिष्ट्यम् भवति। यत् तत् ज्ञानम् पाठम् वा सुस्पष्टम् भवति, सम्प्रदायेन च पवित्रम् भवति, साधुसमुच्चरितम् भवति, सुमुखेन च कण्ठादिना उच्चरितम् भवति। सुन्दरेण च ध्वनिना युक्तम् भवति। एतादृशः वेदः वस्तुतः तस्य जनस्य शरीरे शोभते, परमाम् शोभाम् आवहति, इति भावः।। 51।।

अवतरणिका–इसके पश्चात् वेद–मन्त्रों में स्वरों के शुद्ध उच्चारण विषयक महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।। 52।।

अन्वय– स्वरतः वर्णतः वा, हीनः, मन्त्रः मिथ्या–प्रयुक्तः, तम् अर्थम् न आहः, सः वाग्–वज्रः यजमानम् हिनस्ति। यथा स्वरतः अपराधात्, इन्द्रशत्रुः (यजमानमेव हतवान्)।। 52।।

अनुवाद–स्वर से अथवा वर्ण से हीन मन्त्र, मिथ्यारूप में प्रयुक्त होकर, अभिलषित अर्थ को प्रदान नहीं करता है, अपितु यह मन्त्र तो वाक्‌रूपी वज्र होकर, यजमान का ही विनाश कर डालता है। जैसे– 'इन्द्रशत्रु' शब्द के त्रुटिपूर्ण ढंग से उच्चारण के कारण (यजमान का ही विनाश हो गया)।। 52।।

'चन्द्रिका'–यदि वेद–मन्त्रों को उसके स्वरों से विहीन उच्चारण किया जाए, उनका मिथ्यारूप से प्रयोग किया जाए, तो वह व्यक्ति को उसका अभिलषित प्राप्त नहीं कराता है। इतना ही नहीं, इसप्रकार से उच्चारण किया गया वेद, तो वस्तुतः उसकी हानि करने वाला ही होता है।

यहाँ तक कि इसप्रकार प्रयुक्त किया गया वह वेद तो वाणीरूपी वज्र के रूप में परिवर्तित होकर उलटे यजमान को ही विनष्ट कर डालता है। तत्पश्चात् इस विषय में उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

इसप्रकार का अशुद्ध उच्चारण किया गया, वह वेद उसीप्रकार यजमान को ही विनष्ट कर देता है, जैसे– 'इन्द्रशत्रु' पद के उच्चारण में उदात्त पद के वैपरीत्य के कारण, उस यज्ञ को करने वाले, यजमान का ही विनाश कर डाला था।

विशेष– (i) उपर्युक्त श्लोक के सम्बन्ध में एक कथा आती है कि– प्राचीन समय में तपस्या करने वाले 'त्रिशिरा' नामक असुर का इन्द्र ने वध कर दिया, तो उसे पिता 'त्वष्टा' ने इन्द्र का वध करने वाले, 'वृत्रासुर' नामक पुत्र की आकांक्षा से अभिचारिक याग का आयोजन किया, जिसमें ऋत्विजों द्वारा **'इन्द्रशत्रुर्विवर्धस्व'** इत्यादि मन्त्र का उच्चारण किया गया।

ध्यातव्य है कि यहाँ 'इन्द्रशत्रु' शब्द में इन्द्रः शत्रुः यस्य सः' इत्यादि विग्रह के अनुसार बहुव्रीहि समास करने पर यह पद आद्युदात्त होता है, जबकि 'इन्द्रस्य शत्रुः' इत्यादि विग्रह के अनुसार षष्ठी तत्पुरुष समास में यही पद अन्तोदात्त हो जाता है।

ऋत्विजों को अभिलषित अर्थ षष्ठी तत्पुरुष का था, किन्तु अज्ञान के कारण उन्होंने इसका उच्चारण अन्तोदात्त के स्थान पर, आद्युदात्त के रूप में कर दिया, जिससे इन्द्र ही वृत्रासुर को मारने वाला हो गया। इस कथा का स्वर के दोष के उदाहरण के रूप में विद्वानों में अत्यधिक प्रचलन है।

टिप्पणी– (i) प्रयुक्तः– प्र+√युञ्ज+क्त, प्रयुक्त किया गया ।

संस्कृत–व्याख्या– ग्रन्थकारः कथयति यत्–स्वरेण, वर्णेन वा रहितः, वैदिकः मन्त्रः, अलीकरूपेण उच्चारितः सन्, अभीष्टम् प्रयोजनम् नैव ददाति, अपितु एतादृशः मन्त्रः वाक्–वज्रो भूत्वा, तस्य यज्ञकर्तारम् वै हन्ति। अनिष्टमेव प्रयच्छति, इतिभावः। विषयेऽस्मिन् उदाहरणम् ददाति ग्रन्थकारः– यथा स्वरजनितात् दोषात्, 'इन्द्रशत्रुः' शब्देन अस्य यज्ञस्य यजमानम् वृत्रासुरम् एव हतवान्, इति।। 52।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् इसी क्रम में वेदों के विभिन्न अंगों के दुष्ट प्रयोग के विषय में तथा स्वर से वर्जित होने के बारे में, होने वाले अनिष्ट के सम्बन्ध में ग्रन्थकार कहते हैं कि–

अनक्षरं हतायुष्यं विस्वरं व्याधिपीड़ितम्।
अक्षता शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके।। 53।।

अन्वय– अनक्षरम् हत–आयुष्यम्, विस्वरम्, व्याधि–पीड़ितम्। अक्षता शब्दरूपेण, मस्तके वज्रम् पतति।। 53।।

अनुवाद–वेदों का अक्षर दुष्ट होने पर, यजमान की आयु का हनन करने वाला होता है तथा स्वर से रहित होने पर यह उसे रोग से युक्त बनाता है, इसीप्रकार यह वेदशास्त्र वज्ररूप में परिवर्तित

होकर अप्रतिहत गति वाले 'शस्त्र' के रूप में यजमान के मस्तक पर गिरता है।। 53।।

'चन्द्रिका'–कहने का तात्पर्य है कि यदि वेद के मन्त्रों में प्रयुक्त अक्षरों को दोषयुक्त प्रयोग किया जाए, तो वे इस यज्ञ के यजमान की आयु को कम करने वाले होते हैं। इसीप्रकार यदि उस यज्ञ में वेद मन्त्रों का स्वर से रहित प्रयोग किया जाए, तो वे उस याग के यजमान को रोग से युक्त करने वाले होते हैं।

श्लोक के उत्तरार्द्ध में ग्रन्थकार इससे भी अधिक अनिष्ट की बात करते हुए कहते हैं कि– वास्तविकता तो यह है कि इसप्रकार प्रयुक्त हुआ यह वेदशास्त्र वस्तुतः वज्र के रूप में परिवर्तित होकर अर्थात् अप्रतिहत गति वाला होकर, यजमान के सिर पर गिरता है तथा उसे विनष्ट कर डालता है।

विशेष–(i) वेदमन्त्रों के शुद्ध उच्चारण की महत्ता का प्रतिपादन सुन्दर शैली में किया गया है।

(ii) वेदमन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के साथ–साथ उनमें स्वरों के भी सम्यक् प्रयोग की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है। इसके अतिरिक्त वेदमन्त्रों के सम्बन्ध में प्रचलित मान्यता भी बतायी गयी है।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–46)

वेद मन्त्रों के अक्षर
अनक्षरम् — हत–आयुष्यम्
विस्वरम् — व्याधि–पीड़ितम्
अक्षता शब्दरूपेण — मस्तके वज्रम् पतति
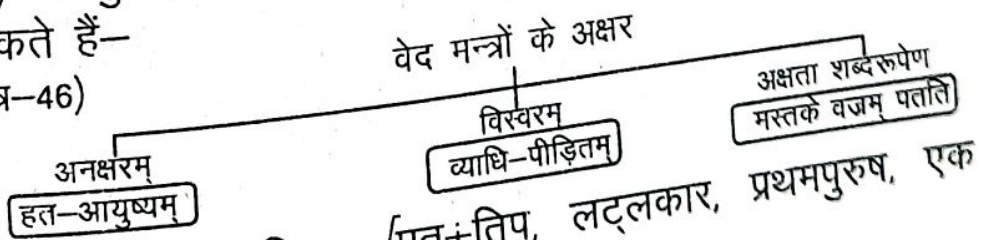
टिप्पणी– (i) पतति– √पत्+तिप्, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एक वचन, गिरता है।

संस्कृत–व्याख्या– ग्रन्थकारः कथयति यत्– वेदोऽयम् यदि दुष्टाक्षरयुक्तः प्रयुज्यते, तर्हि अयम् यजमानस्य आयुषम् हन्ति, घातयति इति, अल्पीकरोति, इति भावः। एवमेव यदि एषः स्वरवर्जितः उच्चारयेत्, तर्हि अयम् यजमानम् रोगपीड़ितम् करोति। नैव एवम्, अपितु एषः

अप्रहिता आयुधरूपेण कुलिशम् सत्, यजमानस्य उत्तमांगे शिरसि इति भावः, निपतति, इति, अनेन प्रकारेण तस्य यजमानस्य विनाशम् भवति, अतः वेदस्य सर्वथा शुद्धरूपेण खलु प्रयोगः कर्तव्यः।। 53।।

अवतरणिका–इसी क्रम में आगे वेदमन्त्रों के प्रयोग को स्वरसहित हस्तचालन के साथ उच्चारण न करने पर, इससे होने वाली हानि का ग्रन्थकार उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम्।
ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति।। 54।।

अन्वय– तु यः हस्तहीनम् स्वर–वर्ण–विवर्जितम् अधीते, सः ऋक्, यजुः, सामभिः, दग्धः सन्, वियोनिम् अधिगच्छति।। 54।।

अनुवाद–किन्तु जो व्यक्ति हस्तसंचालन से रहित, उदात्तादि स्वर तथा अक्षरों से भ्रष्ट, वेद का पाठ करता है, वह ऋक्, यजुः, साम, इस वेदत्रयी रूपी अग्नि से जलकर, सूकर आदि निकृष्ट योनि को प्राप्त करता है।। 54।।

'चन्द्रिका'–यदि कोई वेदपाठी व्यक्ति वेद के मन्त्रों को स्वर के अनुसार बताए गए विधान से, अपने हाथ का परिचालन करते हुए, पाठ नहीं करता है, अपितु यहाँ प्रयुक्त होने वाले उदात्त आदि स्वर तथा अक्षरों से भ्रष्टरूप में पाठ करता है, तो ऐसा व्यक्ति ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद रूप वेदत्रयी रूपी अग्नि में जलने के बाद, अगले जन्म में सूकरादि निकृष्ट योनि में जन्म ग्रहण करता है। इसलिए व्यक्ति को हमेशा ही वेदमन्त्रों के उच्चारण में निर्धारित किए गए नियमों का पालन करते हुए, शुद्धरूप में ही पाठ करना चाहिए।

विशेष–(i) ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद इन वेदत्रयी को यहाँ अशुद्ध उच्चारण होने पर, अग्नि के रूप में परिवर्तित होने की बात का उल्लेख, इस वेदत्रयी के मन्त्रों का शुद्धता के साथ उच्चारण पर बल देने के लिए किया गया है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रस्तुत किया जा सकता है–

(चित्र–47)
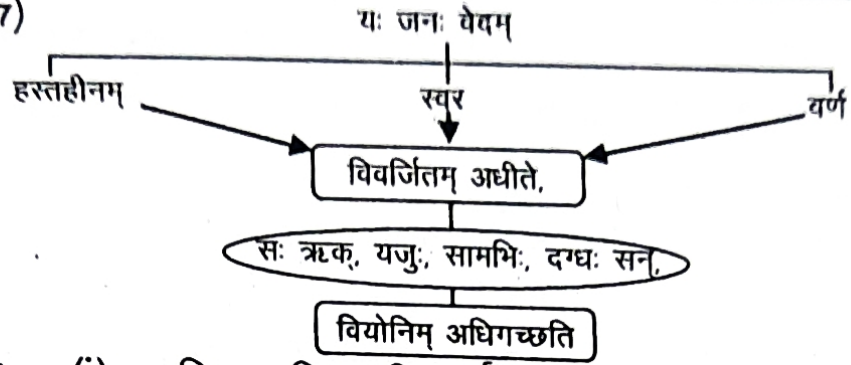
टिप्पणी– (i) अधिगच्छति–अधि+√गम्+तिप्, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, प्राप्त करता है।

(ii) अधीते– अधि+√इङ्+तिप्, आत्मनेपदी, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, अध्ययन करता है।

संस्कृत–व्याख्या–ग्रन्थकारः कथयति यत्– योऽपि वेदस्य अध्येता हस्तसंचालनरहितम्, उदात्तादिस्वराक्षरभ्रष्टम् वेदम् पठति। तस्य 'ऋग्य–जुःसाम' एतद् आख्यम् वेदत्रयी रूपी अग्निना ज्वलितः सन् वियोनिम् अर्थात् निकृष्टयोनिशूकरादिम् योनिम् अधिगच्छति, प्राप्नोति, इति भावः।। 54।।

अवतरणिका– इसप्रकार वेदों के भ्रष्ट उच्चारण से होने वाली हानि का उल्लेख करके, ग्रन्थकार वेदों के सम्यक्रूप से स्वरों के अनुसार हस्त–प्रचालन के साथ उच्चारण किए जाने पर, इससे प्राप्त होने वाले लाभ का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम्।
ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ।। 55।।

अन्वय–यः (जनः) स्वर–वर्ण–अर्थ–संयुतम् वेदम् हस्तेन अधीते, (सः जनः) ऋक्–यजुः–सामभिः पूतः ब्रह्मलोके महीयते ।। 55।।

अनुवाद– जो व्यक्ति स्वर, वर्ण तथा अर्थ से युक्त, उदात्त आदि स्वरों की सूचना देने वाले, अपने हाथ के संचालन के साथ, वेद का अध्ययन करता है। वह ऋक्, यजुः, साम, इस वेदत्रयी के द्वारा पवित्र होकर, ब्रह्मलोक में महिमावान् होता है।। 55।।

'चन्द्रिका'–भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) वेद मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण की महिमा का कथन किया गया है, जिससे पाठक को इनके पूर्णतया शुद्धरूप में उच्चारण करने की प्रेरणा प्राप्त हुई है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रस्तुत किया जा सकता है–

(चित्र–48)
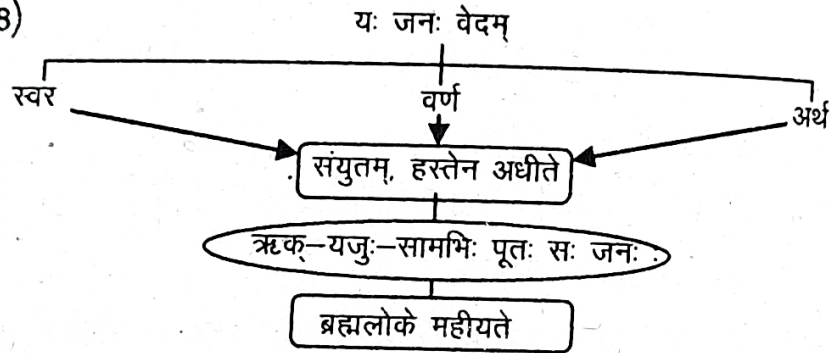
टिप्पणी– (i) वेदों के उच्चारण में स्वर की तथा वर्णों की शुद्धता के साथ–साथ स्वरों के अनुसार हस्तप्रचालन की आवश्यकता भी प्रतिपादित की गयी है।

(ii) इसीप्रकार वेदों का शुद्ध उच्चारण व्यक्ति को मोक्ष प्रदान कराने वाला होता है। इसका भी उल्लेख ग्रन्थकार ने प्रस्तुत श्लोक में किया है।

संस्कृत–व्याख्या– ग्रन्थकारः कथयति यत्– यः वेदपाठकः वेदम् स्वर–अक्षर–अर्थ–सहितम् उदात्तादिस्वरेण युतम्, तस्य प्रकाशकम्, हस्तसंचालनम् सम्यक्रूपेण कृत्वा पठति। एतादृशः सः वेदपाठकः वस्तुतः 'ऋग्यजुःसाम', एतद् आंख्येन वेदत्रयेण पवित्रीभूत्वा ब्रह्मणः भुवने अर्थात् ब्रह्मलोके महिमानम् लभते, तत्र देवैरपि सम्मानम् प्राप्नोति, इति अभिप्रायः।। 55।।

अवतरणिका–वेदों के शुद्ध–पाठ की महिमा का उल्लेख करने के बाद, प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार व्याकरण–शास्त्र की प्राप्ति विषयक परम्परा का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

शंकरः शांकरीं प्रादाद्दाक्षीपुत्राय धीमते।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः।। 56।।

अन्वय– शंकरः वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य, शांकरीम् देवीम् वाचम्, धीमते, दाक्षी–पुत्राय प्रादात्, इति, स्थितिः (अस्ति)।। 56।।

अनुवाद–भगवान् शंकर ने सम्पूर्ण वाङ्मय से सार को ग्रहण करके, इस शांकरी दिव्यवाणी (व्याकरण) को प्राप्त करके, बुद्धिमान् दाक्षिपुत्र महर्षि पाणिनि को प्रदान किया, यही वस्तुतः यथार्थस्थिति भी है।।56।।

'चन्द्रिका'–इस दिव्यवाणी अर्थात् व्याकरण–विद्या को प्राचीनकाल में सर्वप्रथम भगवान् शंकर ने सम्पूर्ण वाङ्मय का आलोडन–विलोडन करके, उसके साररूप तत्त्व को निकालकर, दाक्षीपुत्र परम बुद्धिमान्, महर्षि पाणिनि को प्रदान किया था। इसीकारण इस व्याकरण–शास्त्र का दूसरा नाम 'शांकरी–विद्या' भी है। वस्तुतः यही वास्तविक स्थिति है, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है।

विशेष–(i) व्याकरण शास्त्र के प्रथम वक्ता भगवान् शंकर को बताया गया है। इसीलिए इस विद्या को शांकरी–विद्या के रूप में भी जाना जाता है।

(ii) आचार्य पाणिनि की माता के नाम का उल्लेख भी 'दाक्षी' के रूप में किया गया है।

(iii) इसके अतिरिक्त भगवान् शंकर को आचार्य पाणिनि के आराध्य के रूप में वर्णित किया गया है। इसीकारण विद्वज्जनों में मान्यता प्रचलित है कि–

पाणिनि की तपस्या से प्रसन्न होकर "भगवान् शंकर ने अपने डमरू को बजाकर, उससे 'अइउण्, ऋलृक्' इत्यादि चौदह प्रत्याहार–सूत्रों का निःसरण किया था। इसीलिए उन्हें 'माहेश्वर–सूत्र' की संज्ञा प्रदान की गयी।"

(iv) इसके अतिरिक्त व्याकरण–शास्त्र की अन्य विशेषता भगवान् शंकर द्वारा स्वयं परिश्रम करके, सम्पूर्ण वाङ्मय से निकाले गए तत्त्व के रूप में बतायी गयी है, जिससे व्याकरण–शास्त्र के महत्त्व में वृद्धि की भावना भी अभिव्यक्त हुई है।

(v) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रदर्शित कर सकते हैं–

(चित्र–49)
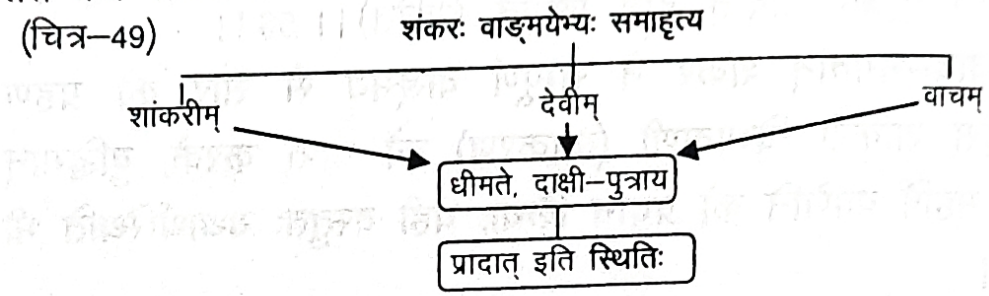
टिप्पणी– (i) समाहृत्य– सम्+आ+ √हृ+ल्यप्, भलीप्रकार ग्रहण करके।

(ii) प्रादात्–प्र+ √दा+तिप्, लुङ् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, विशेषरूप से प्रदान किया।

(iii) स्थितिः– √स्था+क्तिन्, सम्प्रदाय विशेष, दशा।

संस्कृत–व्याख्या–भगवान् शंकरः श्रुतिभ्यः सारम् समुद्धृत्य, शांकरीम् ताम् स्वसम्बन्धिनीम् देवीम् वाचम् व्याकरणनाम विद्याम्, धीमते विदुषे पाणिनये, यस्य माता दाक्षी आसीत्, तस्मै प्रदत्तवान्, एवम् प्रकारेण अस्य सम्प्रदायस्य व्याकरणस्य स्थितिः विद्यते, इति, नैव विषये ऽस्मिन् संशयलेशोऽपि वर्तते।। 56।।

अवतरणिका– इसप्रकार भगवान् शिव से ही इस व्याकरण शास्त्र को ग्रहण करके, आचार्य पाणिनि ने इसका सभी को उपदेश प्रदान किया, इसप्रकार व्याकरण विषयक वक्तृ–परम्परा के विषय में उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि–

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः।। 57।।

अन्वय– येन महेश्वरात् अक्षर–समाम्नायम् अधिगम्य, कृत्स्नम् व्याकरणम् प्रोक्तम्, तस्मै पाणिनये नमः।। 57।।

अनुवाद–जिन आचार्य पाणिनि ने, भगवान् शिव से सम्पूर्ण वर्णों अइउण् आदि के अर्थ को अधिगत करके, सम्पूर्ण व्याकरण–शास्त्र का उपदेश प्रदान किया, उन पाणिनि मुनि को नमस्कार है।। 57।।

'चन्द्रिका'–इसप्रकार दाक्षीपुत्र आचार्य पाणिनि ने भगवान् शिव से व्याकरण विषयक सभी वर्णों की शिक्षा को ग्रहण करके, सम्पूर्ण व्याकरण–शास्त्र का दूसरे लोगों को कृपापूर्वक उपदेश प्रदान किया, इसप्रकार के उन तीक्ष्णबुद्धि सम्पन्न, आचार्य पाणिनि मुनि को मैं हृदय से नमस्कार करता हूँ।

विशेष–(i) पचपन के बाद प्रयुक्त होने वाले पाँच श्लोकों के आधार पर ही कुछ विद्वान् हमारे विवेच्य शिक्षा–ग्रन्थ को पाणिनि के अतिरिक्त किसी अन्य विद्वान् की रचना मानते हैं।

(ii) किन्तु इस विषय में इस बात की सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि आचार्य पाणिनि के परमभक्त किसी व्यक्ति को पाणिनि ने पहले इस व्याकरण–शास्त्र का उपदेश प्रदान किया हो, बाद में उस व्यक्ति ने इसे लिपिबद्ध कर दिया हो।

(iii)यही कारण है, कि यहाँ प्रयुक्त प्रस्तुत श्लोक तथा इसके बाद में प्रयुक्त होने वाले, दो श्लोकों में आचार्य पाणिनि को श्रद्धा के साथ नमन किया गया है, जिससे विद्वान् लेखक की पाणिनि के प्रति श्रद्धा–भक्ति भावना प्रदर्शित हुई है।

टिप्पणी– (i)प्रोक्तः–प्र+ √वद्+क्त, प्रकृष्टरूप से कहा गया।

(ii) अधिगम्य–अधि+ √गम्+ल्यप्, प्राप्त करके।

(iii) 'नमः' पद के योग में 'नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलम्' वार्तिकसूत्र से 'पाणिनये' पद में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

संस्कृत–व्याख्या–येन महर्षिपाणिनिना भगवतः शंकरात् वर्णसमूहम् अइउण्, इत्यादिकम् प्राप्य, समस्तम् एतत् शब्दशास्त्रम् कथितम्, इति। एतादृशाय पाणिनये तस्मै, अहम् नमो वाक् प्रसरामि, उच्चारयामि, इत्यर्थः श्रद्धापूर्वकम्, इति।। 57।।

अवतरणिका– इसी क्रम में आगे आचार्य पाणिनि की प्रशंसा करते हुए ग्रन्थकार उन्हें अपनी प्रणति पुनः प्रस्तुत करते हैं–

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः।। 58।।

अन्वय–येन विमलैः शब्दवारिभिः पुंसाम् गिरः धौता, अज्ञानजम् तमः च भिन्नम्, तस्मै पाणिनये नमः।। 58।।

अनुवाद–जिसने निर्मल शब्दरूपी जलों द्वारा, लोगों की वाणी का प्रक्षालन कर दिया तथा उनके अज्ञानरूपी अन्धकार को, छिन्न–भिन्न कर दिया, ऐसे उन महर्षि पाणिनि को नमस्कार है।। 58।।

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत श्लोक में विशेषरूप से तीन बातों का कथन किया गया है–

प्रथम, जिन आचार्य पाणिनि ने अपने व्याकरणशास्त्रीय निर्मल शब्दरूपी उपदेश द्वारा, सामान्य जनों की अशुद्ध वाणी का प्रक्षालन किया अर्थात् उसे शुद्धरूप प्रदान किया।

द्वितीय, इसप्रकार उन सामान्य लोगों के अज्ञानरूपी अन्धकार को अपने व्याकरण विषयक उपदेश से विनष्ट कर दिया।

तृतीय, इसप्रकार के उत्कृष्ट गुणों से सम्पन्न, आचार्य पाणिनि को मैं, इस ग्रन्थ का लेखक अत्यन्त श्रद्धा के साथ नमन करता हूँ।

विशेष–(i) निर्मलशब्दरूपी जल में उपमेयशब्द तथा उपमान जल में अभेद की स्थापना के कारण रूपक अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है। अतः प्रस्तुत श्लोक ग्रन्थकार की आलंकारिक शैली का सुन्दर उदाहरण है।

(ii) इसीप्रकार अज्ञानरूपी अन्धकार में भी रूपक अलंकार की स्थिति को समझना चाहिए, क्योंकि यहाँ अज्ञान उपमेय तथा अन्धकार उपमान में अभेद की स्थापना की गयी है।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–50)
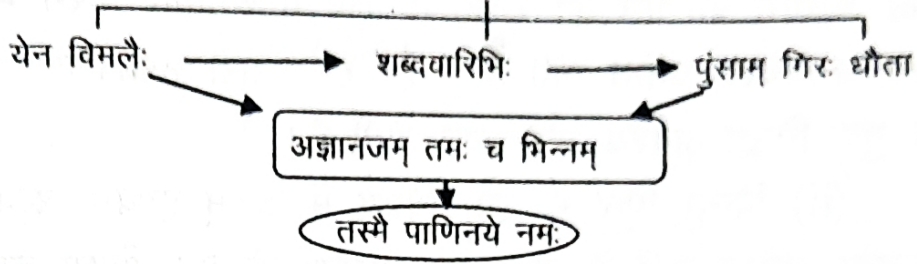
टिप्पणी– (i) भिन्नम्– √भिद्+क्त, विदीर्ण करना, विनष्ट करना।

संस्कृत–व्याख्या– पुनः ग्रन्थकारः कथयति, आचार्यपाणिनेः प्रशंसायाम् यत्– येन पाणिनिना स्वच्छैः शब्दरूपजलैः जनानाम् वाचः प्रक्षालिताः, अज्ञानजनितम् अन्धकारम् च दूरीकृतम् विनाशितम् वा, तस्मै प्रथितयशसे पाणिनये नमः, प्रणतयः प्रेषयामि, इत्यर्थः।। 58।।

अवतरणिका–इसी क्रम में पुनः ग्रन्थकार कहते हैं कि–

अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः।। 59।।

अन्वय–ज्ञान–अंजन–शलाकया अज्ञान–अन्धस्य लोकस्य चक्षुः, येन उन्मीलितम्, तस्मै पाणिनये नमः।। 58।।

अनुवाद–ज्ञान के अंजनरूपी शलाका द्वारा, अज्ञान से अन्धे हुए, सम्पूर्ण संसार के प्राणियौं के नेत्रों को, जिसने उद्घाटित कर दिया, ऐसे उन महर्षि पाणिनि को नमस्कार है।। 58।।

'चन्द्रिका'–व्याकरणरूपी ज्ञान द्वारा, जिन आचार्य पाणिनि ने ज्ञान के अंजनरूपी शलाका से, अज्ञान से अन्धे हुए, इस संसार के सभी प्राणियों के नेत्रों को उन्मीलित किया, इसप्रकार के प्रसिद्ध यश वाले, उन महर्षि पाणिनि को मैं नमस्कार करता हूँ।

विशेष–(i) कुछ विद्वानों की यह भी मान्यता है कि– बाद में प्रयुक्त ये श्लोक जिनमें महर्षि पाणिनि को नमस्कार किया गया है, बाद में प्रक्षिप्त रहे हैं, किन्तु यदि किसी अपने योग्य, श्रद्धालु शिष्य को आचार्य पाणिनि द्वारा व्याकरण का उपदेश प्रदान किया गया हो तथा बाद में उस शिष्य द्वारा इसे लिपिबद्ध किया गया हो, तो प्रस्तुत ग्रन्थ

को आचार्य पाणिनि की रचना के रूप में स्वीकार करने में किसीप्रकार का अनौचित्य प्रतीत नहीं होता है। हाँ, इससे उस शिष्य की गुरुभक्ति व गुरु निष्ठा अवश्य अभिव्यक्त होती है।

(ii) किन्तु फिर भी इस विषय में 'इदम् इत्थम्' रूप में कुछ भी कहना सम्भव नहीं है, यदि हम उपदेश के बाद शिष्य द्वारा इस ग्रन्थ के लेखन को स्वीकार कर भी लें, तो भी हमारे विचार से आचार्य पाणिनि के प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्तृत्व में किसीप्रकार की कोई कमी नहीं आती है।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी प्रस्तुत कर सकते हैं–

(चित्र–51)
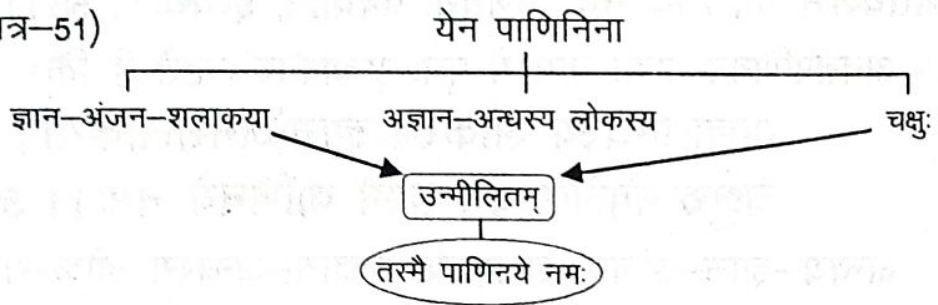
टिप्पणी– (i) उन्मीलितम्–उत्+√मील्+क्त, खोल दिया।

संस्कृत–व्याख्या–ग्रन्थकारः कथयति यत्– ज्ञानम् एव अंजनम् तस्य अंजनस्य या शलाका सा ज्ञानांजनशलाका, तया अंजनशलाकया, अज्ञानेन अन्धः, अज्ञानान्धः, तस्य अज्ञानान्धस्य लोकस्य सम्पूर्णभुवनस्य जगतः, इत्यर्थः। चक्षुः नेत्रम्, उद्घाटितम्। एतादृशाय तस्मै पाणिनये दाक्षेः आत्मजाय प्रणतिम् वितरामि, इति।। 59।।

अवतरणिका– ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकार प्रस्तुत लघु-ग्रन्थ को पढ़ने की फलश्रुति का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

त्रिनयनमभिमुखनिःसृतामिमां
य इह पठेत् प्रयतश्च सदा द्विजः।
स भवति धनधान्यपशुपुत्रकी[illegible]–
नतुलं च सुखं समश्[illegible]ीति दिवीति।।6[illegible]।।

अन्वय–यः द्विजः प्रयतः, सदा त्रिनयनम् अभिमुख–निःसृताम्, इमाम् पठेत्, सः इह धन–धान्य–पशु–पुत्र–कीर्तिमान् भवति। दिवि इति, दिवि इति, अतुलम् सुखम् च समश्नुते।। 60।।

अनुवाद– जो द्विज प्रयत्नपूर्वक, हमेशा ही भगवान् शंकर के श्रीमुख से निकले हुए, इस ग्रन्थ को पढ़ता है, वह इस लोक में धन, धान्य, पशु, पुत्र तथा कीर्ति को प्राप्त करके, निश्चय ही, अतुलनीय सुखों को प्राप्त करता है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।।60।।

'चन्द्रिका'–भावार्थ स्पष्ट है।

विशेष–(i) प्रस्तुत फलश्रुति पर पुराणों का प्रभाव परिलक्षित होता है, क्योंकि पुराण–ग्रन्थों में प्रायः प्रत्येक अध्याय में, उस अध्याय के पठन, श्रवण करने से होने वाले, फलों का कथन किया गया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है। उपजाति छन्द में उपेन्द्रवज्रा तथा इन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के लक्षण मिश्रित रूप से होते हैं।

(iii) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(चित्र–52)
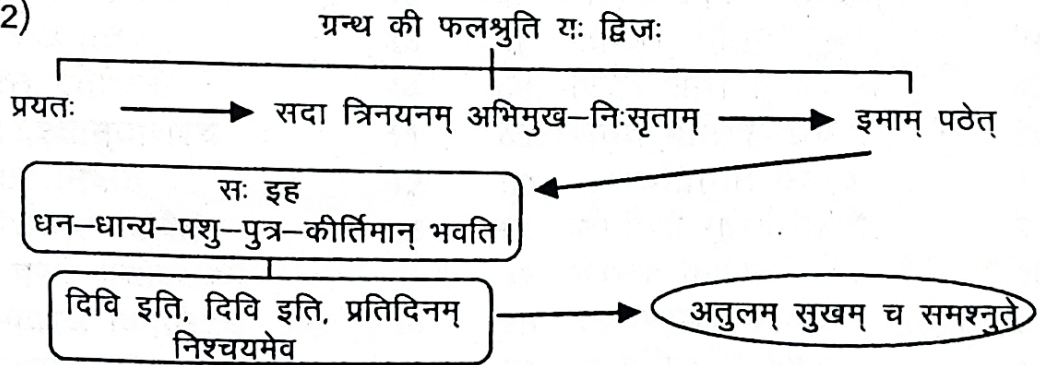
टिप्पणी– (i)पठेत्–√पठ्+तिप्, विधिलिंग लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, पढ़ता है। सम्भावना में विधिलिंग लकार का प्रयोग।

(ii) भवति–.–√भू+तिप्, विधिलिंग लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, होता है।

(iii) समश्नुते–सम्+ √अशु(व्याप्तौ) आत्मनेपद, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन, भलीप्रकार व्याप्त(प्राप्त) कर लेता है।

संस्कृत–व्याख्या–

यः विप्रः जितेन्द्रियो भूत्वा सदैव शिवमुखात् निर्गताम् इमाम् पाणिनीयशिक्षाम् पठति प्रतिदिनम्। सः ब्राह्मणः अस्मिन् जगति धनम्, वित्तम्, अन्नम्, पशुम्, सुपुत्रान् च कीर्तिमान् लभते, अन्यत् च विपुलम् कल्याणम् प्राप्नोति। अत्र उपजातिः नाम वृत्तम् विद्यते, तस्य लक्षणम् इदम्–स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, इन्द्रवज्राछन्दसः लक्षणम् तथा च इन्द्रवज्राछन्दसः लक्षणम् उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततौ गौ, इत्यादि मिलित्वा उपजातिः छन्दः निर्मीयते।। 60।।

।। इसप्रकार बाँसवाड़ा, राजस्थान निवासी
डॉ. राकेश शास्त्री द्वारा की गयी, पाणिनीय–शिक्षा की डायग्रामिक
'चन्द्रिका' हिन्दी, संस्कृत–व्याख्या पूर्ण हुई।।

•••

परिशिष्ट

a) पाणिनीय–शिक्षा में प्रयुक्त श्लोकानुक्रमणिका (अकारादिक्रम से)

1. अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि 1
2. अग्निः सोमः प्र वो 46
3. अचोऽस्पृष्टाः यणः 38
4. अज्ञानान्धस्य लोकस्य 59
5. अर्ध मात्रा तु कण्ठ्यस्य 19
6. अनक्षरं हतायुष्यं 53
7. अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो 48
8. अनुस्वारयमानांच 22
9. अनुस्वारे विवृत्यां तु 24
10. अनुस्वारो विसर्गश्च 5
11. अन्तोदात्तमाद्युदात्त 45
12. अलाबुवीणानिर्घोषः 23
13. अष्टौ स्थानानि 13
14. आत्मा बुद्ध्या 6
15. ईषच्छ्वासांश्चरो 40
16. उत्तमाख्याति 43
17. उदात्तं प्रदेशिनीं 44
18. उदात्तश्चानुदात्तश्च 11
19. उदात्ते निषाद 12
20. उपांशुदष्टं त्वरितं 35
21. एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः 31
22. ओभावश्च विवृत्तिश्च 14
23. कण्ठ्यावहाविचुयशाः 17
24. कण्ठे माध्यन्दिनयुगं 8
25. कुतीर्थादागतं दग्ध 50
26. गीती शीघ्री शिरः 32
27. चाषस्तु वदते मात्रां 49
28. छन्दः पादौ तु वेदस्य 41
29. जिह्वामूले तु कुः 18
30. अमोऽनुनासिकाः 39
31. तारं तु विद्यात्सवनं 37
32. त्रिनयनमुखनिःसृताम् 60
33. त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा 3
34. प्रसिद्धमपि शब्दार्थ 2
35. प्रातः पठेन्नित्यमुरः 36
36. मध्ये तु कम्पयेत् 30
37. मन्त्रो हीनः स्वरतो 52
38. माधुर्यमक्षरव्यक्तिः 33
39. मारुतस्तूरसि 7
40. यथा सौराष्ट्रिकाः 26
41. यद्योभावप्रसन्धानं 15
42. येन धौताः गिरः पुंसां 58
43. येनाक्षरसमाम्नाय 57
44. रंगवर्णं प्रयुंजीरन् 27
45. व्याघ्री यथा हरेत् 25
46. शंकरः शांकरीं प्रादात् 56
47. शंकितं भीतिमुद्घुष्टं 34
48. शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य 42
49. संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं 20
50. सुतीर्थादागतं व्यक्तं 51
51. सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो 9
52. स्वरतः कालतः 10
53. स्वराणामूष्मणां चैव 21
54. स्वराविंशतिरेकश्च 4
55. हकारं पंचमैर्युक्तं 16
56. हविषां मध्योदात्तं 47
57. हस्तहीनं तु योऽधीते 54
58. हस्तेन वेदं योऽधीते 55
59. हृदयादुत्करे तिष्ठन् 29
60. हृदये चैकमात्रस्तु 28

•••

b) परीक्षोपयोगी प्रश्न –

1. पाणिनीय शिक्षा के प्रयोजनों का उल्लेख कीजिए। (2)
2. भगवान् शिव के मत में वर्णों की संख्या बताइए।(3)
3. महर्षि पाणिनि ने व्याकरण की शिक्षा किससे प्राप्त की।(56)
4. पाणिनीय शिक्षा के आधार पर स्वरों की संख्या लिखिए। (4)
5. पाणिनीय शिक्षा के अनुसार स्पर्श–वर्णों की संख्या बताइए।(4)
6. पाणिनीय शिक्षा के आधार पर यम कौन–कौन से है? (4)
7. पाणिनीय शिक्षा के अनुसार उपध्मानीय कौन सा वर्ण है? (4)
8. पाणिनीयशिक्षा के आधार पर दुस्पृष्ट वर्णों का उल्लेख कीजिए (4)
9. वर्णोच्चारण में आत्मा किसे प्रेरित करता है? (6)
10. मुख के अंगों में मुख्यरूप से अक्षरों को कौन जन्म देता है? (9)
11. स्वरों के आधार पर अच् के भेदों का उल्लेख कीजिए। (11)
12. काल के विचार से अच् के भेदों का कथन कीजिए। (11)
13. उदात्त में संगीत के कौन से स्वर विद्यमान रहते है?(12)
14. संगीत के किन स्वरों का पाणिनीय शिक्षा में उल्लेख हुआ है?(12)
15. वर्णों के आठ उच्चारण स्थानों का कथन कीजिए। (13)
16. विसर्गों की गति के कितने प्रकारों का यहाँ उल्लख हुआ है?(14)
17. महर्षि पाणिनि की माता का नाम लिखिए। (56)
18. सभी स्वरों के उदाहरणरूप में एक ही वाक्य का उल्लेख कीजिए।(46)
19. स्वरों की संस्थिति के नौ प्रकारों का कथन कीजिए। (45)
20. वेदपुरुष में पाणिनि के अनुसार अंगों का उल्लेख कीजिए। (41–42)
21. अधम पाठक के दुर्गुणों का कथन कीजिए। (32)
22. श्रेष्ठ पाठक के गुणों का उल्लेख कीजिए। (33)
23. 'रंग' पद के मात्रादि से उच्चारण स्थानों के विषय में लिखिए. (28)
24. सौराष्ट्र की नारी तक्र पद का किसप्रकार उच्चारण करती है? (26)
25. अनुनासिक वर्णों का उल्लेख कीजिए। (22)

•••

लेखक परिचय

नाम : डॉ. राकेश शास्त्री

शिक्षा : हाईस्कूल (1971), इण्टरमीडिएट (1973) प्रथम श्रेणी (यू.पी. बोर्ड), बी.ए.(ऑनर्स संस्कृत) (1975) मेरठ विश्वविद्यालय की योग्यता सूची में छटवाँ स्थान, महाविद्यालय स्वर्णपदक, एम.ए. (संस्कृत-साहित्य वैशिष्ट्य) (1977), प्रथम श्रेणी, पुराणेतिहासाचार्य (1984) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, वि.वि. योग्यता सूची मे प्रथम स्थान, विश्वविद्यालय स्वर्णपदक, साहित्याचार्य (प्रथम श्रेणी), डी.लिट् (2013), (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

अनुभव : सेवानिवृत्त अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, श्री गोविन्द गुरु राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँसवाड़ा (राज.) लगभग 29 वर्ष राजस्थान सरकार की उच्चशिक्षा सेवा, एम. फिल्, पी-एच.डी. के छात्रों को निर्देशन। गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के संस्कृत-विभाग में लगभग 5 वर्ष अध्यापन, वैदिक एवं पौराणिक रिसर्च इन्सटीट्यूट नैमिशारण्य (सीतापुर) उ.प्र. में शोध-सहायक 2 वर्ष।

ग्रन्थ लेखन : ऋग्वेद के निपात, मार्कण्डेय महापुराण (हिन्दी अनुवाद), मनुस्मृति (सम्पूर्ण दो खण्डों में), वेदान्तसार, सांख्यकारिका, तर्कसंग्रह, तर्कभाषा, अर्थसंग्रह, भारतीय दर्शन की मूल अवधारणाएँ, स्नातक संस्कृत सरला, सुगम संस्कृत व्याकरण आदि दर्शन एवं व्याकरण ग्रन्थों की डायग्रामिक सरल हिन्दी व्याख्या, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, स्वप्नवासवदत्तम्, मुद्राराक्षसम्, नागानन्दम्, प्रतिमा नाटकम्, रत्नावली नाटिका आदि नाटकों का सरल हिन्दी अनुवाद एवं 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, बृहदृक्सूक्त चन्द्रिका, ऋक्सूक्त चन्द्रिका बृहदारण्यकोपनिषद, कठोपनिषद् शांखायन ब्राह्मण (1-2 भाग) आदि वैदिक ग्रन्थों की सरल प्रस्तुति, ज्योतिष दिग्दर्शिका, पंचस्वराः, मनुष्यालय चन्द्रिका, भुवन दीपक, आदि ज्योतिष एवं वास्तुषास्त्रीय ग्रन्थों की डायग्रामिक सरल प्रस्तुति। महाभारतकार एवं कालिदास की काव्यकला, नाटककार कालिदास, कालिदास की काव्यचेतना, कालिदास की वैज्ञानिक दृष्टि, कालिदास की उपमा-योजना आदि उच्च कोटि के संदर्भ शोध ग्रन्थों के प्रणेता, संस्कृत निबन्ध चन्द्रिका,संस्कृत बोध-कथा मंजरी, संस्कृत नाटय् निकुंजम्, संस्कृत कविता मंजरी संस्कृत कथा मंजरी आदि 70 से भी अधिक मौलिक एवं व्याख्या ग्रन्थों के लेखक।

शोध पत्र : प्रसिद्ध शोध पत्र-पत्रिकाओं एवं अभिनन्दन ग्रन्थों में 65 से अधिक शोध निबन्ध प्रकाशित, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठियों में 50 से अधिक शोधलेख पठित, सत्रों की अध्यक्षता तथा मुख्यवक्ता।

पुरस्कार व संदर्भ ग्रन्थों में नामाल्लेख : आदिवासी जनजाति क्षेत्र बाँसवाडा में पूर्णतया समर्पित संस्कृत प्रचार-प्रसार के लिए राष्ट्रीय, राज्यस्तरीय तथा स्थानीय स्तर पर लगभग 25 से अधिक पुरस्कारों से सम्मानित तथा राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ ग्रन्थों में नामाल्लेख।

मुद्रक : राजेन्द्रा प्रोसेस-9811153301

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पोस्ट बॉक्स नं. 2206

बंगलो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर (कमला नगर के पास), दिल्ली-110007

फोन : 23851617, 23858790

Email : chaukhambhaorientalia@gmail.com, www.chaukhambhaorientalia.com